Chapter-1

प्रथम अध्याय

क– पृष्ठ भूमि एवं परिचय
ख– वेदों और पुराणों और उपनिषदोंमें गुरु तत्व की अवधारणा
ग– नाथों सिद्धों की वाणियों में गुरु तत्व की अवधारणा
घ– संत काव्यों में गुरु तत्व की अवधारणा

क—पृष्ठभूमि और परिचय

पंजाब और गुजरात की भूमि पर अनेक सिद्धों ,संतों ,संन्यासियों और गुरुओं की वाणी पल्लवित —पुष्पित हुई । यह एक ऐसा प्रदेश है जहाँ अध्यात्म की बोली फैली जिसे नानक और अखा जैसे संतों नें अपनीं ज्ञान—गिरा से सींचा। जिसकी ज्ञानगरिमा आज पूरे देश में गुंज रही है । यदि पंजाब और गुजरात को हिन्दू जाति आर्य सम्यता का उद्गम स्थान कहा जाय तो अव्युक्ति न होगी। वैदिक प्रमाणों ऐतिहासिक अन्वेषणों ,धार्मिक अभिमतों तथा विभिन्न विचारोंसे यह सहज सिद्ध है कि सचमुच पंजाब , हिन्दू जाति एवं हिन्दू संस्कृति का उद्गम स्थान है । ::1— पंजाब की भूमि पर अनेंको कान्तियां हुई ।कौरवों और पांण्डवों के रक्त से रंजित यह वही भूमि है जहां पर महाभारत का युद्ध हुआ और साथ ही साथ गीता का उपदेश भी गूंजा । एक तरफ जहां पंजाब की भूमि पर कृष्ण भगवान धर्म और अधर्म ,सत्य और असत्य ,ज्ञान और अज्ञान के मर्म को समझाया वहीं पर दूसरी ओर उन्हों नें गुजरात की धरती को अपनीं लीला भूमि बनाई ।

परंतु जब हम गुजरात या पंजब की मध्यकालीन ,धार्मिक ,सामाजिक, साहित्यिक ,आर्थिक तथा राजनीतिक स्थितियों का अवलोकन करते हैं तो अनेक तथ्य उभर कर हमारे सामनें आ जाते हैं । पंजाब प्रदेश अरबों ,मुगलों, तुर्कों के आकमण से टूट चुका था । गुरु नानक देव के समय में हिन्दुओं का वास्तविक धर्म समाप्त हो चुका था । ब्राह्मण ,क्षत्रीय ,वैश्य और शूद्र किसी भी वर्ग में समता नहीं थी । जॉति—पॉति और छुआ—छूत के बखेड़े से पूरा समाज त्रस्त हो चुका था । हिन्दुओं में कोई पारस्परिक संगठन नहीं था। हिन्दुओं के घरेलू झगड़ों नें उन्हे खण्ड—खण्ड कर रखा था ।शैव—वैष्णवों को और वैष्णव शैवों को सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखते थे । यहां तक की एक दूसरे के पतन पर तुला हुआ था । इधर तान्त्रिक लोग भी मनमानें ग्रंथ गढ़ कर लोगों

को अनाचार की ओर प्रवृत्त कर रहे थे । इनके प्रचार से भारत का भविष्य दूषित होनें को था । मुसलमान लोग अपनें धर्म के प्रचारार्थ तरह–तरह के षड्यंत्र रच रहे थे । ::2–सारांश यह है कि उस समय की राजनीतिक स्थिति बड़ी भयंकर मोड़ ले चुकी थी । सामाजिक व्यवस्था में एक बिख्सराव आ चुका था । मुसलमानों के बलगत धर्म परिवर्तन एवं हिन्दुओं की मानसिक कमजोनी के कारण वाह्याडंबर की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल रहा था । शासको में अहं भाव की प्रधानता आ गई थी । राजा धार्मिक और सामाजिक अस्तित्व को स्वीकर करनें में अपना अपमान समझता था । दूसरी ओर शताब्दियों के अत्याचार ,अपमान और राजनीतिक दासता के फलस्वरुप हिन्दू अपना शौर्य,आत्मगौरव औ ।र आत्मविश्वास खो बैठे थे । धर्म का वास्तविक स्वरुप लुप्त होनें लगा था।

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेंक धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक आंदोलन हुये । इसप्रकार सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दू मस्तिष्क प्रगतिहीन और स्थिर न रह सका । मुसलमानों के संसर्ग से वह उद्वेलित होकर परिवर्तित हो उठा और नवीन प्रगति के लिये उत्तेजित हो उठा । ::3–पंजाब पर सं. 1583 के मुसलमानों के आकमण से देश की जनता त्रस्त हो उठी । मुसलमानों के द्वारा हो रहे अत्याचारों से गुरु नानक देव का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। मुसलमान शासक निरीह मानवता के विरुद्ध कूरता और नृशंसता से प्रहार कर रहे थे । गुरु नानक देव समकालीन वल्लभाचार्य जी को भी मुसलमानों के आकमण द्वारा हिन्दुओं की धार्मिक स्थिति के बिगड़ जानें का मार्मिक दुःख था ।

मुसलमानों के प्रभाव में आ जानें के कारण प्राचीन हिन्दू ब्यवस्था प्रयः पूर्ण रुप से नष्ट हो गई , राजनीतिक एवं सामाजिक वर्गीकरण ध्वस्त कर दिये गये ,वर्णव्यवस्था विकलांग एवं रुपांतरित कर दी गयी, धार्मिक प्रवित्तियों को नई दिशा एवं नई गति प्रदान की गई । इस प्रकार एक अविभाजित भारत की भावना असंभव हो गयी । सामाजिक, धार्मिक, और ऐतिहासिक काल की

स्थितियों का अवलोकन करते हैं तो हमें अनेंक दृष्टि बिन्दुओं का पता चलता है जिनसे पंजाब और गुजरात की संत संपदा प्रभावित हुयी हैं । गुजरात और पंजाब के संत साहित्य पर शैव,वैष्णव शाक्त ,जैन ,बौद्ध एवं नाथपंथी वर्गों का प्रभाव दीख पड़ता है । इनसे भी प्रायः संप्रदाय और उपसंप्रदाय बनते गये । उनका परस्पर मतभेद उन्हो एक दूसरे से अलग रहनें की ओर प्रवृत्ति करता था। शैव समाज में जहां पाशुपत ,कापालिक, और अघोर पंथ को प्रश्रय मिल रहा था वहां शाक्त ,संप्रदाय, में आनन्द भैरवी ,भैरवी चक ,सिद्धिमार्ग जैसे गुह्यपंथों की श्रृष्टि हो गयी थी । और वैष्णव पंथो में भी अन्तरंग समाज बनते जा रहे थे । इसीलिये हिन्दू साधनाओं का वाममार्ग तथा दक्षिण मार्ग में विभाजित हो गया था और इनमें से प्रथम गुप्त एवं अनैतिक बातों तक प्रवृत्त था । जिसके फलस्वरुप हिन्दू धर्म में सुधार करनें के यत्न भी होने लग गये थे। शंकर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, जैसे महापुरुषो नें इसके लिये नवीन आंदोलनों की सृष्टि करके उसमें नया जीवन जीने की सफल चेष्टायें की ।

गुजरात में वैष्णव धर्म के प्रचारकों में मध्व और निम्बार्क का उतना स्थान नहीं है जितना स्थान महाप्रभु बल्लभाचार्य और विट्ठल नाथ जी का है । वैष्णव तीर्थों में द्वारका और डाकोर न केवल गुजरात में ही अपितु भारत देश के महान पुण्यस्थलों में समझे जाते हैं । गुजरात के संतो की ज्ञानमार्गी शाखा यद्यपि वैष्णव धर्म के अनाचारों के विरोध में खड़ी हुई थी परतु वैष्णवी विचारधारा का वह नितांत रुप से परित्याग न कर सकी । अखा और मांडण संस्कारों से वैष्णव ही थे । अखा ,प्रीतम्, तथा निरांत जी की ज्ञानवादी धारा में प्रेमलक्षणा भक्ति का जो सुंदर समन्वय हमें देखनें को मिलता है वह शायद ज्ञानमार्गी शाखा में अन्यत्र कहीं दृष्गिोचर नहीं होता । प्रीतम् , धीरो , निरांत , नरभे , तथा अन्य संतो नें ब्रह्मलीला का निरुपण कृष्णलीला के आधर पर ही किया गया है । इसप्रकार यदि हम ध्यानपूर्वक हम देखें तो चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी का संपूर्ण गुजरात स्वामी रामानन्द की विचारधारा से प्रभावित

हुई है ::4–। कबीर, पीपा, रैदास ,आदि इन्हीं की प्रेरणा के बल पर थे । गुजरात की ज्ञानश्रयी शाखा के दादू, मांडण ,एवं अखा उत्तर की इस परंपरा से प्रभावित हुये थे । कबीर के पश्चात यदि सम्पूर्ण संत साहित्य में यदि कोई अद्वितीय रत्न दीख पड़ता है तो वह है अखा । गुजरात में जिस साधना का बीज कबीर नें बोया था उसको पल्लवित–पुष्पित किया अखा नें । कबीर पंथ की अनेंक स्वतंत्र शाखायें– प्रशाखायें गुजरात में अब भी फैली हैं जिन्हो नें गुजरात की समस्त संतवाणी को प्रच्छन्न रुप से प्रभावित किया है । गुजरात के अधिकांश संतो के जीवन को बदलनें में धार्मिक सामाजिक स्थितियों के साथ–साथ वैयक्तिक परिस्थितियों का भी हाथ रहा है जिसके जीते जागते उदाहरण–नरसी मेहता ,धीरा ,अखा ,आदि मुख्य हैं जो सद्गुरु की खोज में निकल पड़े हैं ।

दूसरी ओर पंजाब के संत कवियों का यदि हम अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि पंजाब में विभिन्न मत–मतांतर प्रचलित थे द्विवयता वाद की दृष्टि से पंजाब में तीन मत प्रचलित हैं 1–देव पूजन, 2– शैव मत ,3– शाक्त मत आदि !

यहां देवतावाद से तात्पर्य है वैदिक प्रणाली से चले आते हुयें विभिन्न देवी,देवताओं के पूजन अर्चन से , क्यों कि वैदिक काल से सिंधु घाटी की सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थान रहा है आर्यो की सभ्यता यहीं पल्लवित–पुष्पित हुई है । वेदों में जिन सूर्य ,अग्नि ,वरुण , आदि देवताओं की चर्चा हुई है । उनका क्षेत्र सिंधु का परवर्तित प्रदेश ही रहा है । मुख्यतः शिव पूजन का क्षेत्र रावल पिण्डी तथा काश्मीर है पंजाब प्रांत के निवासी सिंधी समुदाय के लोग आज भी वरुण–देवता की हर्षोल्लास के साथ उपासना करते हैं । शक्ति पूजन के क्षेत्र में लाहौर , अमृतसर , कांगडा , जालंधर , से लेकर जम्मू का प्रदेश शक्ति उपासना का क्षेत्र रहा है । पंजाब प्रदेश में सूर्य की उपासना भी प्राचीन काल से प्रचलित है । जिसकी चर्चा पुराणों में भी मिलती है । ऐतिहासिक तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंजाब का यह क्षेत्र विभिन्न

देवी–देवताओं की उपासना का तथा विभिन्न फलती–फूलती संस्कृतियों और सभ्यताओं का केंद्र बिन्दु रहा है । दूसरी इस प्रदेश की यह महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि यह प्रदेश विभिन्न साहित्यिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चिंतन के लिये प्रसिद्ध रहा है । ब्रह्म सरोवर , ज्योती सरोवर ,थानेश्वर , कालेश्वर , चन्द्रकूप , विष्णुकूप , रुद्रकूप , द्विपकूप , काम्यवन , अदितिवन , व्यासवन , फलकीवन , सूर्यवन , मधुवन , सीलवन , वाणगंगा , कर्णतीर्थ , यक्षतीर्थ , कुबेरतीर्थ , मार्कण्डेयतीर्थ , दधीचितीर्थ , सूर्यकुंण्ड , सोमकुण्ड , तथा वामनकुण्ड आदि विभिन्न तीर्थों के संगम से लहलहाता हुआ यह पंजाब प्रदेश निश्चय ही विश्व संस्कृति में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है पृथ्वीराज रासो में भी जालन्धरी देवी की उपासना का निरुपण मिलता है । ::5– कालान्तर में शैव और शाक्त मत , नाथमत में मिल गये । हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंजाब में नाथमत की एक बड़ी श्रृंखला रही है । नाथ विचारधारा के पूर्व पंजाब में बौद्ध और शैवमत के साथ–साथ वम–मार्गी विचारधारा भी पल्लवित–पुष्पित दिखाई देती है । जालन्धर पीठ बौद्धमत की बज्रयानी शाखा का प्रचार केंद्र रहा है । बौद्ध मत से विकसित सिद्ध मत नें नाथ संप्रदाय को जन्म दिया शैवमत नें उसे प्राण दिये । शाक्त तथा अन्य मत–मतान्तरों नें उसे संमृद्ध किया । नाथ संप्रदाय नें ब्राह्मण वाद का डट कर विरोध किया है । उसने जाति , धर्म ,संप्रदाय ,पाखंड ,कर्मकांड , बाह्माचार ,से हटकर अपनें संप्रदाय की नींव डाली । पंजाब में जो प्रसिद्ध नाथ हुये वह जालन्धरनाथ , चौरंगीनाथ ,चर्पटनाथ ,बालानाथ प्रमुख हैं । जिनमें जालन्धरनाथ ,का प्रमुख स्थान रहा है ।

ख– वेदों और पुराणों और उपनिषदोंमें गुरु तत्व की अवधारणा

गुरु तत्व अर्थात जो उस अनंत सत्ता का सीधा सम्पर्क सूत्र करा दे । वस्तुत

गुरु व्यक्ति और ईश्वर के मध्य एक संपर्क सूत्र ही है । वो एक ऐसा व्यक्तित्व है जो जीवत्व की शूद्रता से उठकर ईश्वरत्व की महत्ता को प्राप्त कर चुका होता है । इसलिये इसे इन दोंनों धरातलों तक पहुँचनें में स्वच्छंदाता है । इसप्रकार वह स्वयं अलौकिकता में स्थित भटकते हुये लोगों को एक हाथ से उठानें का काम करता है तो दूसरे हाथ से उन्हें अनन्त सच्चिदानन्द परमेंश्वर (अलौकिक आनन्द) की अनुभूति कराता है यथा गुरु गीता वर्णते–

"अज्ञान तिमिरान्धकारस्य ज्ञानान्जन श्लाकयाः ।
चर्क्षुमिलितम् येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।। –6

अर्थात जिन्होने ज्ञानरुपी अंजन की श्लाका से ज्ञानरुपी नेत्र को खोलकर अज्ञान अंधकार को नष्ट कर दिया है ऐसे गुरु को नमस्कार!

आचार्य, उपाध्याय ,ज्येष्ठ ,श्रेष्ठ, उपदेशक इत्यादि भी गुरु शब्द के ही मूल अर्थ हैं । गुरु शब्द की व्याख्यायें हम निम्न रुप से कर सकते हैं ।

"गिरत्य ज्ञान मित्ति"

अर्थात जो अज्ञान दूर करता है

गृणाति धर्ममीति गीर्यते इति। –7

जो धर्म का उपदेश करता है एवं जिनका स्मरण किया जाता है ।

मनु "समृति" के मतानुसार गुरु के लक्षण निम्नांकित हैं ।

"निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथा विधि।
सम्भावयति चात्रेन से विप्रो गुरु रुच्यते ।।

अर्थात निषेक 'गर्भाधान' पुंसवन जात कर्म, उपनयन संस्कार कर्म यथा योग्य करनें वाला और अन्नदाता द्वारा पालन पोषण किया हुआ विप्र ही गुरु है ।

याज्ञवल्लकयानें भी मनु के इस विचार का सर्मथन किया है 'देवल स्मृति 'के अनुसार गुरुवों की परंपरा है यथा–

"आचार्यश्य पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महि पतिः।

मातुलः श्वसुरः स्त्राता माता मह पितामहौ ।

वर्ण ज्येष्ठो पितृत्पश्च पुस्येते गुरुवो मताः ।। –8

आचार्य, पिता ,छोटा भाई ,राजा ,मामा, ससुर ,रक्षणकर्ता ,माताके पिता , पिता के पिता ,जाति में बड़ा ,व पितृय इन पुरुषों को ग्यारह गुरुवों के रुप में स्वीकार किया गया है ।

'नाम चिन्तामणि के अनुसार गुरु के निम्नांकित बारह प्रकार हैं ।

1–धातुवादी गुरु	2– चंदन गुरु	3– विचार गुरु
4–अनुग्रह गुरु	5– पारस गुरु	6– कच्छप गुरु
7–चंद्र गुरु	8– दर्पण गुरु	9– छायानिधि गुरु
10.–नाधनिधि गुरु	11– करौच गुरु	12–सूर्यकांत गुरु

1–धातुवादी गुरु ::–शिष्य से नाना प्रकार की साधनायें एवं तीर्थ यात्रायें करवानें के बाद ज्ञानोंपदेश करते हैं ।

2–चंदन गुरु::– चंदन वृक्ष जैसी अपनीं सुगंध दूसरों 'पर' को ही लुटाता है एवं अपनीं खुशबू से चारों दिशाओं को सुगंधित कर देता है उसी प्रकार अपनीं संगति मात्र से चंदन गुरु शिष्य को भव जल पार करा देता है ।

3– विचार गुरु::– शिष्य को सारा सार का बोध करा सुक्ष्म मार्ग द्वारा आत्मसाक्षात्कार करवानें वाला।

4– अनुग्रह गुरु::– केवल कृपा अनुग्रह से शिष्य कोज्ञान देनें वाला ।

5–पारस गुरु::–पारस जैसे अपनें र्स्पश मात्र से लोहे को सोना बनाता है ठीक उसी प्रकार अपनें कर र्स्पश से साधक को दिव्य ज्ञान प्रदान करता है ।

6–कच्छप गुरु::–कछुआ जैसी अपनीं दृष्टि से ही अपनें बच्चों का पालन पोषण करता है ठीक उसी प्रकार शिष्य का केवल कृपा दृष्टि से यह गुरु उद्धार करनें वाला है ।

7–चंद्र गुरु::– चंद्रमा निकलनें पर जैसे चंद्रकांत मणी को आंतरिक आनन्द का एहसास होता है उसी प्रकार सिर्फ आंतरिक दया दृष्टि से शिष्य को पार उतारनें वाला है

8–दर्पण गुरु::– जिस प्रकार आइनें में अपना चेहरा साफ दिखायी देता है उसी प्रकार आत्म साक्षात्कार से शिष्य को आत्म ज्ञान करनें वाला

9–छाया निधि गुरु::–'छाया निधि' नाम का एक बृहदकाय पक्षी आकाश में घूमता रहता है उसकी परछायी जिसपर पड़े वो भविष्य में राजा होगा ऐसी धारणा है उसी प्रकार साधक पर केवल अपनीं छत्रछाया रखकर उसको स्वानन्द स्वराज्य का अधिपति करवानें वाला ।–9

10–नादनिधि गुरु::– 'नादनिधि' नामक एक ऐसी मणि है कि जो भी धातु के संपर्क में आती है वो तुरंत सोना बन जाती है ठीक इसी प्रकार साधक को केवल सद्गुरु की करुण वाणी सुनते ही दिव्य ज्ञान प्रदान करनें वाला।

11–करौच गुरु::–'क्रौच' (मादा) पक्षी अपनें बच्चों को समुद्र के किनारे छोड़कर दूर देश में भोजन लेनें के लिये जाती है उस बीच वह बराबर आकाश को देख कर अपनें बच्चों का स्मरण करती है उस स्मरण मात्र से उसके बच्चे उसी स्थान पर जहां वह छोड़ गयी थी तंदुरुस्त हो जाते हैं । ठीक इसी अनुसार शिष्य को याद करके जहां वह है वहीं आत्मानन्द का उपभोग करा वाला ।

12सूर्यकान्त गुरु::– जिस प्रकार सूर्य किरणों के स्पर्श से सूर्यकांत मणि में अग्नि उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार अपनीं दृष्टि जहां पड़े वहीं पर साधकों को विलिप्ता का भाव देनें वाला ।

"पिशिचला तंत्र के अनुसार गुरु के दो भेद बताये गये हैं 1– दीक्षा गुरु,2–शिक्षा गुरु –10

1– पूर्व परंपरा से प्राप्त हुये मंत्रों की दीक्षा देने वाले दीक्षा गुरु कहलाते हैं।

2– जबकि समाधि, ध्यान , धारणा ,जप, स्तवन, कवच, पुरुश्चरण महा

पुरुश्चरण ,और साधनों की विभिन्न विधि व योग, ये कियायें सीखानें वाले शिक्षा गुरु होते हैं

जबकि 'गुरुतत्व' के अनुसार गुरु की श्रेणीयों को निम्नांकित दो भागों में विभक्त किया गया है 1– दीक्षा गुरु,2–शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु को पुनः दो भागों में बांटा गया है 1–मंत्र दीक्षा, 2–ज्ञान दीक्षा ।

1–शिक्षा गुरु:– जितस गुरु के माध्यम से हमें लौकिक विद्याओं ,भाषा ,विज्ञान ,गणित, ज्योतिष, संगीत ,चिकित्सा छंद, इत्यादि का ज्ञान होता है उन्हें हम शिक्षा गुरु,कहते हैं

2–दीक्षा गुरु::– दीक्षा गुरु के पुनः दो भाग कर दिये गये हैं

1–मंत्र दीक्षा, 2–ज्ञान दीक्षा ।–11

1–मंत्र दीक्षा::– ऐसे गुरु प्रायः साधकों को विभिन्न शास्त्रों में वर्णित विभिन्न मंत्रों का उपदेश देते हैं साथ ही साधक को विभिन्न प्रकार के पूजा, पाठ, कर्मकांड आदि में लगा देते हैं परिणाम स्वरुप साधक को ज्ञान की आनुभ्ति करनें की क्षमता विकसित करवाते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश इनमें से अधिकांश गुरु इस कर्मकांड को ही आत्म साक्षात्कार या भगवान की भक्ति कहकर उन साधकों को जीवन में उलझाये रखनें का प्रयास करते हैं।

2–ज्ञान दीक्षा::– वे गुरु जो साधक को अंर्तमुख होनें एवं आत्म साक्षत्कार का मार्ग बतलाते हैं और इतना ही नहीं अपितु अपनीं कृपा के (शक्तिपात्र) माध्यम से एक बार साधक को अवश्य ही उस प्रकाश की झलक दिखा देते हैं । जिसमें ध्यानावस्थित होकर साधक आत्म साक्षत्कार की चरम् अवस्था (समाधि) तक पहुच जाता है ।

पुस्तकों के अध्ययन मात्र से कोई व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता । जो व्यक्ति वेद, शास्त्र आदि के तत्वों का ज्ञाता होता है तथा जिसनें अनुभव के द्वारा आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति की है वही गुरु श्रेणी में आ सकता है ।–12 , संक्षेपतः एक जीवन मुक्त अथवा संसार के राग–द्वेष कामादि विकारों व आत्मा–ईश्वर संबंधी

अज्ञानता से मुक्त संत ही वास्तविक गुरु या आध्यात्मिक निर्देशक हो सकता है ।गुरु वह व्यक्ति होता था जिसनें विद्यार्थी को अंधकार से प्रकाश और असत्य से सत्य की ओर जानें मं सहायक होनें का प्रर्ण भरोसा था ।

"तमसो मा ज्योर्तिगमय, असतोमा सद्गमय" –13

उसनें अपनीं बुद्धी के जो सूत्र निकाले ,वे लिपि कि अभाव काल में तो उपयोगी रहे ही ,लिपिज्ञान हो जानें पर भी उसका महत्व नहीं घटा । एक बार जब गुरु नें अपना स्थान बना लिया तब न उसकी उपयोगिता ही नष्ट हुई और न उसका प्रभाव ही कम हुआ । आज के वैज्ञानिक युग में भी जब पुस्तकें आदि अनेकानेक उपकरण विद्याक्षेत्र में उपलब्ध हैं ,शिक्षक की उपयोगिता उससे समाप्त नहीं हुयी है । गुरु परंपरा वैदिक और पौराणिक हिन्दुओं में तो प्रचलित ही थी –14 . जैन, बौद्धों नें भी उसे स्वीकार किया । गुरु के कार्य व्यापक होते गए और मनु स्मृति के अनुसार (2,142) यह संज्ञा उसी को दी जाती जो शिष्य के अनेक संस्कारोंको सम्पन्न करता हुआ उसे भोजनादि देकर विद्या पढाता था । –15. बृहस्पति नें विदादि शस्त्रों को पढ़ानें वाले व्यक्ति को गुरु कहा है ।

गुरु ज्ञान का दाता है परोक्ष और अधेक्ष सभी ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त गुरु कर्म दाता और भक्ति रस का भी दाता है अर्थात कर्म ज्ञान, और भक्ति की धारायें गुरु–तत्व के माध्यम से ही प्रभावित होती हैं जिनके अनुग्रह से अखण्ड सत्य का स्वरुप प्रकाशित होता है ,वे ही जगत में सद्गुरु हैं । जबकि केवल गुरु शब्द खण्ड सत्य के उपदेष्टा की प्रतीति कराता है । ऐसे गुरु को आगम शास्त्र में 'असद्गुरु' कहते हैं ।

गुरुशब्द' के साथ 'सत्' विश्लेषण लगाकर गुरु विशेष की असद्गुरु से विलक्षणता बन गयी है । मालिनी विजय में वर्णित है

रुद्र शक्ति समा विष्टः सः पिपासु शिवेच्छया ।

मुक्ति–मुक्ति प्रसिद्धयर्थ नियते सद्गुरु प्राप्ति ।। –16

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है की सद्गुरु –प्राप्ति के मूल में भगवतदिच्छा ही

मुख्य कारण है, जीव की इच्छा भी उस मूल भगवदिच्छा की ही अनुगामिनी है । सद्‌गुरुकी खोज के लिये हमें निकलना नहीं पड़ता कभी–कभी अपनें कर्म क्षय के लिये अन्वेषण आवश्यक हो जाता है समय पूरा होनें पर सद्‌गुरु स्वयं ही मुमुक्षु को दर्शन देते हैं । उनकी अनुग्रह शक्ति ही गुरुपद वाच्छ है वे उपेय हैं अर्थात उपाय के सहयोग से प्राप्त होते हैंऔर उपाय भी वे ही हैं । उपयुक्त आधार का अवलम्बन करके गुरुमुखी श्री भगवान जीव के सामनें अपनीं अनुग्रह शक्ति को प्रकाशित करते हैं ।

हमारे संतो नें अपनी–अपनी रचनाओं में गुरु को ब्रह्म से भी अधिक महत्व दिया है ,उन्होंनें गुरु को प्रेरक,प्रथम आभास देने वाला सच्ची लौ लगानें वाला और कुशल आखेटक जो अपनें शिष्य को उपदेश के बाणों से बीध कर उसमें प्रेम की पीर संचरित करा देता है संतो का मान्यता है कि प्रत्येक साधक के लिये गुरु की अनिवार्यता इसलिये भी आवश्क है ,क्योंकि वह अपनीं आध्यात्मिक साधना में कोई भी विघ्न उत्पन्न होनें पर गुरु से मार्ग निर्देशन प्राप्त कर सके –17 साधक एक ऐसा यात्री होता है ,जो लक्ष्य की ओर बढ़नें की लालसा तो रखता है किन्तु वह लक्ष्य को पहचानता नहीं है इसलिये उसे मार्ग निर्देशक की आवश्कता होती है ।

ऐसे मार्ग-दर्शक की आवश्कता होती है जो स्वयं न केवल उस मार्ग को ही देखे हो बल्कि अच्छी तरह लक्ष्य को भी पहचानता हो । गुरु की प्रप्ति द्वारा साधक के हृदय से संशय और आशंका की भावनायें समाप्त हो जात है। उसे साधना मार्ग में एक सहायक मिल जाता है जो उसे विघ्नों बाधओं से परे निकाल देता है उसके पैर डगमडानें पर उसे सहारा दे सकता है उसके साधना में निराश होनें पर उसमें आत्मविश्वास जगाकर आगे बढ़ा सकता है । गुरु का योग्य होना उतना ही जरुरी है जितना कि शिष्य का क्यों कि यदि गुरु अयोग्य होगा तो शिष्य को ही ले डूबेगा ।

गुरु की असीम कृपा शिष्य पर होती है । वस्तुतः वह ब्रह्म की कृपा

पर उतना नहीं आश्रित होता जितना गुरु की इसलिये संतो का यह मत है कि यदि गुरु और गोविंद में से उन्हें चुनना पड़े तो गुरु को ही प्रथम चुनाव स्थान प्रदान करेंगे । वस्तुतः कबीर के मतानुसार गुरु और गोविन्द में कोई अधिक भेद नहीं है ।–

"गुरु गोविन्द तो एक है दूजा यहु आकार ।
आपा मेटि जिवित मरै तो पावै करतारा " ।।

संतों नें गुरु का महत्व भारतीय संस्कृति और दर्शन की परंपरा से ग्रहण किया है अद्वैतारकोपनिषद में कहा गया है –

'गु शब्दस्त्वन्धकारः स्यायु शब्दस्तन्निरोधकः । –18

इस प्रकार 'गु' अर्थात अंधकार और 'रु' अर्थात प्रकाश ।

जो अंधकार अर्थात अज्ञान रुपी कालिमा से युक्त कुँयें से निकालकर सूर्य रुपी प्रकाश का अपनें ही भीतर दर्शन करा देता है वही आत्मसाक्षात्कार सच्चा प्रकाश स्वरुप सूर्य है एवं उस पंथ तक लेजानें वाला कोई और नहीं स्वयं गुरु ही होता है ।

गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा साक्षात् परब्रह्मभी कहा गया है ।–

गुर्रु ब्रह्मा, गुरुः विष्णु, गुरुः देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेः नमः ।।

कबीर के मतानुसार गुरु की कृपा से ही आगम और अगोचर ब्रह्म का दर्शन हो पाता है ।

'अगम अगोचर रहे निरंतरि गुरु कृपा ते लहिये ।

दादू दयाल के मतानुसार जिस प्रकार ताले में चाबी डालकर किसी के द्वारा दरवाजा खोल लिया जाता है उसी प्रकार साधक के ज्ञान चक्षु का उन्मीलन कर गुरु द्वारा परब्रह्म का दर्शन करा दिया जाता है । यथा––

"दादू देव दयाल को गुरु दिखई बात ।
ताला कुंजी लाइकर खोले सबै कपाटै ।।"

संत सुंदरदास के मतानुसार गुरु की कृपा का खूब सुन्दर वर्णन किया गया है।–

" ज्यों रवि के प्रकटै निसि जात सो दूरि कियों भ्रमभानु अंधेरौ ।
कायक–वाचक मानस हुँकरिहै गुरु देवै वन्दन मेरो ।
सुन्दर दास कहै कर जोरि जु दादू दयाल कौ हूं नित चेरो ।।"–19

दरिया दास कहते हैं कि संशय की खींचतान सतगुरु के शब्द मात्र से समाप्त हो जाती है । इससे भ्रम का अंधकार मिटता है और उसके चरणों का निर्वाणदायक होता है ।

गुरु की रहनीं, करनीं, कथनीं से साधक प्रेरणा लेता है । 'रहनीं' के अन्तर्गत गुरु का रहन – सहन आता है , जिसमें उसके दो रुप हो जाते हैं एक तो लोक व्यहार की रहनीं दूसरी आत्म स्थिति की रहनी । साधना पंथ भी इसी रहनीं की रुप है इसमें हम गुरु की परहित चिंता मानापमान में समभाव ,परम संतोषी वृत्ति आदि पाते हैं । गुरु सामाजिक स्थिति को सुव्यवस्थित करता है । समाजपरक एवं व्यक्ति परक आचार – व्यवस्था को नियन्त्रित करता है । 'कथनी' के अंतर्गत गुरु के लोक हित सम्बन्धी उपदेश आते हैं । इसमें हम कथनी और करनी का समन्वय पाते हैं । उनके व्यक्तित्व का परिचय उनकी 'कथनी' से प्राप्त होता है ।

गुरु को अपने शिष्य के प्रति दयालु होना चाहिए " मारयति ज्ञानम् इति गुरुः " इस व्युत्पत्ति के अनुसार गुरु उसे कहते है जो ज्ञान का घूँट पिलाये।ज्ञान का मनुष्य के लिये जो महत्व है उसे बतलानें की आवश्यकता नहीं इसी लिये ज्ञान का वितररण करनें वाले व्यक्ति का भी मनुष्य जाति मात्र के लिये अति महत्व है ।

ज्ञान दो प्रकार का होता है – एक तो 'स्वयं प्रकाश्य' अर्थात अपने आप पैदा होनें वाला और दूसरा 'परतः प्रकाश्य' अर्थात दूसरों के द्वारा प्राप्त होने वाला । 'परतः प्रकाश्य' ज्ञान तो सीधे गुरु के द्वारा ही प्राप्त होता है किन्तु स्वंय

प्रकाश्य' ज्ञान में भी गुरु उस स्थान को इंगित करके शिष्य की बुद्धी को ज्ञान की दिशा में पेंवाहित कर देता है । जिससे स्वंय साधक अपनें लक्ष्यका आभास पाकर उसे ही प्राप्त करनें में जुट जाता है और फिर अन्ततः अपनीं साधना में सफल होता है इस प्रकार दोनों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति में गुरु का महत्वपूर्ण योग रहता है । यही कारण है कि वेदों से लेकर आज तक के भारतीय साहित्य में गुरु की अपार महिमा वर्णित की गई है । इस प्रकार अप्रत्क्ष रुप से उन्हें गुरु माना गया है और उनके महत्व को स्वीकारा गया है । उपनिषदों में भी गुरु का महत्व सर्वत्र दीख पड़ता है यम ने नचिकेता को आत्मा का स्वरुप बतलाते हुये कहा है कि आत्मज्ञान बहुतों को सुनने के लिये भी प्राप्य नहीं है बहुत से लोग उसे सुनकर भी नहीं समझ पाते हैं । इस आत्मतत्व का निरुपण करने वाला 'गुरु' आश्चर्य का विषय है और सुनकर उसे ग्रहण कर सकने वाला व्यक्ति अति कुशल होता है कुशल व्यक्ति के उपदेश ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला भी आश्चर्य का विषय —

श्रवणायापि बहुमिर्यो न लभ्यः
श्रृण्वन्तो पि बहतौ यं न विधुः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य
लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।

इसी संदर्भ में यह भी कहा गया है कि जो कई प्रकार से कल्पित किया हुआ है कि आत्मा साधारण बुद्धि वाले पुरुष द्वारा कहे जाने पर अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता । अभेददर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये गये इस आत्मा में कोई गति नहीं है , क्यों कि यह सूक्ष्म से सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है —

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्य प्रोक्ते गतिरन नास्ति
अणीयान्ह्मतवर्य मणुप्रभाणत् ।।

इस प्रकार गुरु के सुविज्ञ और शिष्य के लग्नपूर्ण होने पर बार– बार जोर दिया गया है। वेदान्त में भी आत्मा का साक्षात्कार कर चुके सिद्ध पुरुषों द्वारा जो जीवन्मुक्त(जीवित रहकर भी मुक्त)रहते हैं विधि पूर्वक वेद–वेदांत पढ़े हुये नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित और उपासना नामक कर्मो द्वारा समस्त पापों से रहित साधक को ज्ञान का उपदेश करना वर्णित है वेदांत विद्या के ही नहीं समस्त विद्याओ को पढ़नें के लिये प्रारम्भ में ही अधिकारी की चर्चा कर दी जाती थी और उसके उद्देश्य की भी रामायण में वशिष्ठ मुनी के गुरुत्व का एक महान गौरव पूर्ण इतिहास है । सूर्यवंशी इक्ष्वाकु राजा नें कुलगुरु वशिष्ठनें त्रिशंकु ,हरिश्न्द्र ,रोहिताश्व आदि को सतयुग में ज्ञान दिया था और बाद में वहीं त्रेता, में दिलीप ,रघु ,अज, दशरथ, और राम आदि के भी गुरु थे । इतनें लम्बे काल तक एक व्यक्ति का जीना असंभव समझकर लोग ' वशिष्ठ' एक व्यक्ति नहीं ,परंतु परंपरा मानना ही उचित समझते हैं ।

मनु नें विद्यार्थियों को धर्म का उपदेश करते समय माता–पिता और गुरु की महिमा गायी गयी है उन्हो नें अनेक प्रकार से गुरु को महान बताते हुये कहा है कि

'गुरु शुत्रूषया त्वमेव
ब्राह्म लोकं समश्नुते'

अर्थात गुरु की सेवा द्वारा ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है यह इसी के समान है कि 'आचार्य देवो भव' 'अर्थात आचार्य देवता मानो अपने गुरु को देवता के समान मानने वाले शिष्य आरुणि अथवा उद्यालक नें अपनी गुरु–भक्ति से गुरु धौम्य को भी अमर बना लिया ।

जो खेत से बहते पानीं को रोकनें की गुरु की आज्ञा के लिये खेत की मेड़ पर ही लेट गया था भवभूति नें गुरु के बारे में कहा है कि गुरु बुद्धिमान और जड़ दोनों प्रकार के शिष्यों को समान रुप से विद्या देता है किन्तु जड़ शिष्य दुर्भाग्य से उतना ग्रहण नहीं कर पाता जितना बुद्धिमान ।

सच्चे गुरु की खोज में भगवान बुद्ध कई वर्ष जंगलो में भटके थे और अंततः उन्हें अपना गुरु बनाना पड़ा इस प्रकार समूचे संस्कृति साहित्य में किसी न किसी सील पर गुरु की महिमा का वर्णित है और अच्छे गुरु की प्रप्ति एक बहुत बड़ी उपललब्धि मानी गई है इससे बढ़कर और क्या कहा जा सकता है ।

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ नाथों और सिद्धों से होता है नाथों और सिद्धों के गुरु का जो महत्व है वह सर्व विदित है गुरुओं की जो भक्ति नाथों और सिद्धों से मिलती है वह संस्कृत साहित्य में वर्णित कथाओं से कम महत्व नहीं रखती । भक्ति काल में तो क्या भक्त ,क्या संत सभी नें 'गुरु' की मुक्त कंठ से महिमा गायी है ।

गोस्वामी तुलसीदास नें गुरु कोशंकर स्वरुप कहा है यथा—

"बन्दे बोध्रमयं नित्यं गुरु शंकररुपिणम्" ।

इतना ही नहीं उन्होनें गुरु की स्तुती में बहुत कुछ लिखा है यथा—

वन्दौ गुरुपद पदुम परागा ।
सुरुचि युवाग सरस अनुरागा ।।

तुलसी दास नें गुरु का महत्व बताते हुये उसके स्मरण मात्र से होने वाले लाभ को बताया है ,कि गुरु की कृपा से हृदय के नेत्र खलनें से साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है–

यथा सुअंजन अजि हग,
साधक सिद्धु सुजान ।
कौतुक देखिहिं सैल बन
भूतल भूरि निधान

सूर के विषय में तो प्रसिद्ध कहावत है कि उनके गुरु वल्लभाचार्य नें उनके कर्तव्य को ही उलट दिया था उनके दैन्य और आत्मग्लानि के पदों को सुनकर वल्लभाचार्य नें कहा था कि —

'क्या घिघियाते ही रहोगे कुछ कृष्ण की लीला गाओ ।'

फिर वात्सल्य और श्रिगार का 'सूर–सागर' उत्ताल तरंगें भरनें लगा था । जो आज भी हिन्दी साहित्य में गौरव की वस्तु है । जायसी के पद्मावत में सुआ गुरु का काम् करता है –

'गुरु सुआ होइ पंथ देखावा ।

अतः प्रेम मार्ग में भी गुरु का महत्व है वही प्रेमी को प्रिय की और सबसे पहले उन्मुख करता है । प्रिय का आभास मिल जानें पर प्रेमी में उसे पानें की अद्भुद लालसा उत्पन्न होती है इस प्रयास में साधक के साथ निर्देशक के रुप में सदैव गुरु ही रहता है।

गुरु वह साधना है जो आने वाले प्रत्येक विघ्न में साधक की सहायता करता है और उसे सिद्धि प्राप्ति का मार्ग है निर्देशन (पथ प्रर्दशक) गुरु ही करता है । जैसे कबीर का कथन है –

' गुरु दिखाई बाट।'

कहकर साधना में सिद्धि का सारा श्रेय अपनें गुरु को दे दिया है ।

''काशी में हम प्रगट भये रामानन्द चेतायै''

उपरोक्त उक्ति भी इसी का प्रमाण है अधिक क्या कहा जाएँ जबकि वे तो गुरु को ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं ।

'गुरु गोविन्द दोउ खड़े ,काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपनें,गोविन्द दियो मिलाय।।''

समर्थ गुरु की वाणी को कबीर का हथियार मानते है। –

हंसै न बोलै उनमनी, चंचल मेंल्हा मारि।
यह कबीर मितर मिधा, सत्गुरु के हथियारि।।

कबीर ग्रंथावली में गुरु की प्रशंसा और आभार व्यक्त करनें के लिये 'गुरु कौ अंग' नामक भाग केवल गुरु को ही अर्पित है । कबीर ने उचित गुरु के चुनाव पर जोर दिया है एवम् अनुचित गुरु का कड़ा विरोध किया है –

'जाका गुरु अंधड़ा, चेला खरा निरवन्त।
अनधेहि अंधा उलिहा दोनों कूप पड़न्त।। 20

मीरा भी बड़े गर्व से कहती थी –

गुरु रैरदास मिले ,मोंहि पूरे,
धूप से कमल मिलो ।
सतगुरु सीख दियो जब अपनीं,
जोति से जोति रली ।।

संतो द्वारा गुरु को जो महत्व दिया गया है उसका कारण डॉ. धर्मवीर भारती के मतानुसार संभवतः 'तान्त्रिक युग ' अवशिष्ट प्रभाव था क्यों कि जैन, बौद्ध, शैव , शक्त, वैष्णव सभी संप्रदायों में जब गुह्य साधनाओं का समावेश हुआ तो गुरु की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती गयी क्योंकि साधना की प्रवृत्ति दुरुह थी एवं अज्ञानी साधक को गुरु का निर्देशन आवश्यक था । तंत्र संप्रदाय ये अतः अनुदार पुरानें आचार्यों की तुलना तें अपनें संप्रदायों के आचार्यों को प्रतिष्ठित करनें के लिये भी सहसा गुरु को अत्यधिक श्रद्धा से मंडित किया जानें लगा था यह प्रतिद्वन्दीता कभी–कभी जातीय और प्रादेशिक आधार पर भी चलती थी –21 (द.'स्टडीज. इन तन्त्र ,प्रबोध चन्द्र बागची)

'गुह्यतन्त्र समाज' में प्रत्येक तथागत का गुरु एक वज्राचार्य बताया गया है जिसकी वे स्वतः पूजा करते हैं इसी सिद्धांत के अनुसार सिद्धों नें गुरु महिमा का गान किया है नाथों का युग योग साधना का ज्ञाता है एवं संतों का गुरु वैष्णवप्रतीत होता है । इसी से संत सदा गुरु की भक्ति के प्रबल समर्थक हैं ।

गुरु को संतों ने अहेरी, सूरमा, पारख, गारुडी, भेदी, खेवक ,ज्ञानप्रकाशी, शतरंज की चाल बतानें वाला कहा है । तो कभी चैतन्य की चौकी पर आसन लगाकर निर्भय निःशंक रहनें का उपदेश उेने वाला , शब्द घोलना से घोल कर ज्ञान मसकला देनें वाला किसलीगर बताया है ।

संतो नें गुरु के लिये ऐसा पद दिया है जो वेदों में 'तत्वमसि' कहकर ब्रह्मया परमेंश्वर को दिये गये पद से भी ऊँचा है । यह पद पारख पद ही सच्चा

पद है। गीता के परम्धाम से भी बहुत ऊँचा इसी पारख पद को पानें वाला पारखी कहलाता है

जो व्यक्ति हमारा मार्ग दर्शन कराता है वह गुरु कहलाता है । हमें उसकी शिक्षा , मार्ग दर्शन पर चल कर उनका आदर करना चाहिये। गुरु और शिष्य के बीच एक विशुद्ध आध्यातमिक संबंध होता है ।

अथर्व वेद के अनुसार—

आचार्य उपनयमानों ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।

तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुममि सयंन्ति देवाः।। –22

बालक जब शिक्षा के उद्‌देश्य से गुरुकुल आता है तब आचार्य उसका उपनयन करनें हेतु उसे अपनें नजदीक बिठाकर और अपनें ध्येय के अनुरुप उसे बताने के लिये तीन रात उसे उदर में रखता है । रात्रि अर्थात अज्ञान अंधकार से उसे निकाल कर प्रकाश की ओर अग्रसर करना । –23

गः:–नाथों और सिद्धो की वाणियों में गुरु तत्व की अवधारणा —

हठयोग प्रद्रीपिका के अनुसार नाथ संप्रदाय सभी यंप्रदायों से प्राचीन संप्रदाय हैं एवं सब नाथों में प्रथम आदि नाथ 'शिव' हैं इसका मुख्य धर्म योगाभ्यास है । अपने मार्ग को ये लोग सिद्ध मार्ग कहते हैं इनके अनुसार नाथ ही सिद्ध हैं । इनके मत का प्रसिद्ध सिद्धांत ग्रंथ 'सिद्ध,सिद्धांत पद्धति 'है अपनें संप्रदाय के ग्रंथों को लोग सिद्धंथ ग्रंथ भी कहते है। । नाथ संप्रदाय में प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य अंत में नाथ संप्रदाय के अनुयायी बनें थे उन्होंनें 'सिद्धांत'बिन्दु' नामक ग्रंथ भी लिखा था । अपनें मत को ये लोग अवधूत मत भी कहते हैं । इसी संप्रदाय की परंपरा से कबीर भी प्रभावित थे । तुलसीदास जी नें रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही सिद्ध मत की भक्ति हीनता की ओर इशारा किया है । गोस्वामी जी के ग्रंथों से यह पता चलता है कि गोरखनाथ नें योग जगाकर भक्ति को दूर किया था –24 । सिद्ध सिद्धांत पद्धति में इस मत को

सबसे श्रेष्ठ बताया गया है । क्यों कि कर्कशतर्क प्रयाण वेदांती माया से ग्रसित हैं । नाथ संप्रदाय के अनुसार तांत्रिको का कोलमार्ग और कापालिक मत नाथ मता अनुयायी है । त्रिपुरा संप्रदाय के अनेक सिद्धों के नाम वही हैं जो नाथ पंथियों के हैं । काशमीर के कौल मार्ग में मत्सेंद्र नाथ को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है । भवभूति के 'मालती माधव' नामक प्रकरण में कापालिको का जो वर्णन है वह बहुत ही भयंकर है । वह लोग मनुष्य की बलि दिया करते थे –25 । परंतु इस नाटक से इतना तो स्पष्ट ही है कि उनका मत षट्रचक्र और नाणिक निचय काया योग से था । यह काया योग नाथपंथियों की अपनीं विशेषता है । स्कंध पुराण के काशी खण्ड में नवनाथों की विन्यास के सिलसिले में जालंधर नाथ का नाम पाया जाता है । जनश्रुति के अनुसार बारह पंथों में से छ शिव के प्रवर्तितहैं और छ गोरख नाथ के प्रवर्तित हैं । नाथ पंथियों का मुख्य संप्रदाय गोरचख–नाथी योगियों का है । गोरख पंथी साधू लोहे या लकड़ी के श्लाकायों के हेर–फेर से चक बनाकर उसके बीच में छेद करते हैं । इस छेद में कौड़ी या मालाकार धागे को डाल देते हैं । फिर मेत्र पढ़कर उसे निकाला करते हैं । शिमला पहाड़ियों के नाथ अपनें को गोरख नाथ और भरथरी का अनुयायी मानते है । । ये लोग उत्तरी भारत के महाब्रह्मणें के समान कान चिरवाकर दान भी मांगते थे । पंजाब में गृहस्थ योगियो को रावल कहा जाता हैं ये लोग भीख मांगकर ,करामात दिखाकर, हाथदेखकर अपनीं अपनीं जीविका चलाते हैं । पंजाब के संयोगी जब एक ही जात के बन गये हैं । गड़वाल के नाथ भैरव के उपासक हैं । सूत का रोजगार योगी जाति का पुराना व्यवसाय है । विवाह के मंत्रों गोरखनाथ मच्छेन्द्रनाथ के नाम आते है । नाथ संप्रदाय की परंपरा में आदिनाथ के बाद मत्सेंद्रनाथ का नाम है । अतः मत्सेंद्र नाम भी इस परंपरा के सर्वप्रथम् आचार्य है । ये गोरख नाथ के गुरु थे । नाथ परंपरा के ये आदि गुरु माने जाते थे । और साथ ही कौलाचार्य के ये सिद्ध पुरुष थे । सारे भारत में उनके नाम की सैकड़ों दन्त कथायें प्रचलित हैं । प्रायः

हर दन्त कथा में वे अपनें शिष्य गोरखनाथ के साथ जडित हैं इन कथाओ में ऐतिहासिक मूल्यों के साथ–साथ इनकी यर्थाथता भी प्रमाणित हो जाती है । इनके नाम को लेकर विभिन्न संप्रदयों में अपना ही मत है। योगी'सप्रदाय में मछन्दरनाथ के नाम से और संस्कृत ग्रंथों में इसका शुद्ध रुप मत्स्येंद्रनाथ दिया गया है । परंतु साधारण योगी इन्हें मत्स्येंद्रनाथ मछन्दरनाथ के नाम से ही अधिक पसंद करते हैं । श्री चंद्रनाथ योगी जैसे सुधारक मनोवृति के महात्मा नें बड़े दुख के साथ मत्स्येंद्रनाथ को मछन्दरनाथ और गौरक्षनाथ को गोरख नाथ कहना योगी संप्रदाय के घोर पतन का साबूत बताया हैं । परंतु प्रचीन पुस्तको में इनके विभिन्न नाम मिलते है। जिससे इनके वास्तविक संबंधी संदेह पैदाहोता है ।

मत्स्येंद्र नाथ द्वारा रचित कई पुस्तके नेपाल की दरबार लाइब्रेरी में सुरक्षित है जिनमें से एक 'कौल ज्ञान निर्णय ' स्वर्गीय महामहोपाध्याय प. हरि प्रसाद शास्त्री के अनुमान से वह ईसवी सन्वी शताब्दी का लिखा बताया गया है ।–26 हाल ही में कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक डॉ. प्रबोधचंद वागची नें इस पुस्तक का तथा अन्य चार इनकी लिखी पुस्तको का अति सुलझा हुआ संस्करण प्रकाशित कराया है । 'कौल ज्ञान के निर्णय से भी मत्स्यघ्न नाम का समर्थन ही हुआ है । इस ग्रंथ के अनुसार मत्स्येंद्र नाथ जाति के ब्राह्मण थे कारण विशेष से इनके जन्म का नाम मत्स्यघ्न पडा कार्तिकेय नें 'कुलागम शास्त्र को चुरा कर समुद्र में फेक दिया था तब उस शास्त्र को बचानें स्वयं भैरव अर्थात शिव नें मत्स्येंद्र नाथ का रुप धारण कर समुद्र में घुसकर उस शास्त्र का भक्षण करनें वाले मत्स्य का उदर चीरकर उस शास्त्र की रक्षा की । यही कारण है कि उन्हें मत्स्यघ्न कहा जाता है । अभिनव गुप्त पाद ने भी 'मच्छन्द्र' नात का ही प्रयोग किया है । इन्हों नं अपनें मतानुसार उसकी रुपात्मक अर्थ सहित व्याख्या की है । आतान–वितान वृत्यात्मक जाल को छिन्न करनें के कारण उनका नाम 'मछन्द ' पडा –27 कबीर संप्रदाय में अब भी 'मच्छ' शब्द मन

अर्थात चपल चित्तवृत्तियों को कहते हैं 28—यह परंपरा अभिनवगुप्त तक जती है कौल ज्ञान निर्णय ' में कई जगह मीन नाथ का नाम आने से डॉ. बागची को इस विषय में कोई सेदेह नहीं कि मत्स्येंद्र नाथ और मीन नाथ एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं । जबकि संप्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार मीतनाथ मत्स्येंद्रनाथ के पुत्र थे ।29— डॉ. बागची इसे परिवर्तित कल्पना मात्र मानते हैं । परंतु सिद्धों की सूची से यह जान पड़ता है कि यह परंपरा काफी पुरानीं है । तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार मीननाथ ,मत्स्येंद्र नाथ के पिता थे 30— कुछ पंडितों नें बौद्ध सहंजयानियो के आदि सिद्धि लुईपाद और मत्स्येंद्र को एक ही व्यक्ति बतानें का प्रयास किया है । लुई शब्द को लोहित शब्द का अपभ्रंश मान कर इस मत की स्थापना की गयी है इस कल्पना का एक और भी कारण यह है कि तिब्बती अनुश्रुति और लुईपाद का एक और नाम मत्तस्यान्त्राद (मछली की अंतड़ी रखनें वाला)दिया है । यह कल्पना यदि सत्य साबित हो तो मत्स्येंद्रनाथ का समय आसानीं से मालूम हो सकता है । लुईपाद के एक ग्रंथ में दीपंकर श्री ज्ञान नें सहायता दी थी । ये दीपेकर श्री ज्ञान सन् 1038 ई में 58 वर्ष की उम्र में विकमशिला से तिब्बत गये थे 31—लुईपाद का समय इसी के आस पास माना जाता हैं । हर प्रसाद शस्त्री जी के कथनानुसार नेपाल के बौद्ध लोग गौरक्षनाथ पर तो बहुत नाराज हैं किन्तु मत्स्येंद्र नाथ को अवलोकितेश्वर का अवतार मानते हैं ।

जालंधरनाथ मत्स्येंद्रनाथ के गुरु भाई थे । तिब्बती परंपरा में मत्स्येंद्रनाथ के गुरु भी मानें जाते हैं । उक्त परंपरा के अनुसार नगर भोग देश में ब्रह्मण कुल में इनका जन्म हुआ था । बाद में ये एक अच्छे पंडित भिक्षु बनें किन्तु घंटापाद के शिष्य कर्मपाद के संगति में आकर ये उनके शिष्य हो गये । मत्स्येंद्रनाथ कण्हपा (कृष्णपाद) और तातिया इनके शिष्यों में थे ।भोटिया ग्रंथों में इन्हें आदिनाथ माना जाता भी है 32— तनजूर में इनके लिखे गये सात ग्रंथों का उल्लेख मिलता है राहुल जी के कथनानुसार जिनमें से दो मगही भाषा में लिखे

गये हैं । 'विमुक्त मंजरी गीत' तथा' हुंकार चित्त विन्दे भावना क्रमा 'सरोरुहपाद के प्रसिद्ध तंत्र ग्रंथ है ' वज्रसाधन 'पर टिप्पणी रुप में लिखित इस ग्रंथ का नाम है 'शुद्धिवज्र प्रदीप' ये सभी पुस्तके काया योग से सम्बद्ध हैं ये पंजाब में अधिष्ठित जालंधरपीठ नामक तांत्रिक स्थान में उत्पन्न हुये थे। दूसरी परंपरा के अनुसार वे हस्तिनापुर के पुरुवंशी राजा वृहद्रथ के यज्ञाग्नि से उत्पन्न हुये थे जिसके फलस्वरुप इनका नाम ज्वालेंद्र पडा था ।33–इस प्रकार से तीन स्थानों को इनकी जन्मभूमि बतायी गयी है । नगरभोग ,हस्तिनापुर और जालंधरपीठ । इनकी जाति संबंधी भी इसी प्रकार के विवाद है। तिब्बती परंपरा के अनुसार ब्रह्मण ,बंगाली परंपरा में हाडी या हलखोर 'योगि संप्रदाय विष्कृति के अनुसार युधिष्ठिर की 23वीं पुश्त में उत्पन्न पुरुवंशीय राजा बृहद्रथ के पुत्र होनें के कारण क्षत्रीय थे । जालंधर नाम से ये अनुमान लगाया जात है कि जालंधरपीठ में ये उत्पन्नहुए थे या फिर सिद्ध हुऐ थे । हठ योग पुस्तकों में एक बंन्ध का नाम जालन्धर बन्ध है । जालन्धर नाथ के साथ सम्बद्ध हानें के कारण ही यह बन्ध जालन्धर बन्ध कहलाता है । इसी प्रकार गोरक्षनाथ ,मत्स्येंद्रनाथ के नाम पर भी एक–एक बन्ध पाये जाते हैं योग शास्त्रीय पुस्तको में उड्डियान बंध की चर्चा भी मिलती है । यह सम्भवतः उड्डिपीठ के किसी सिद्ध प्रवर्ति हैं । गायकबाड़ सिरीज में 'साधनमाला''नामक महत्वपूर्ण बौद्ध तांत्रिक ग्रंथ प्रकाशित हुआ है । इसके संपादक डॉ. विनयतोष जी भट्टाचार्य का अनुमान है कि उड्डियान उड़ीसा में या असम में हैं । डॉ. बागचीनें भी अपनीं पुस्तक 'स्अडीज. इन दी तन्त्राज' में (37–40) इस मत की समीक्षा की है ।, जिससे प्रतिपादित किया है कि उड्डियान वस्तुतः स्वात उपत्याका में ही है और वह जालंधर पीठ के कहीं आस–पास ही है । जितनी भी परंपराओं का उपर उल्लेख है वे सभी जालंधर नाथ का जन्म–स्थान पंजाब की ओर ही निर्देश करती है । तारानाथ नें उड्डियान देश के दो भाग बताये हैं ,जिनमें से एक का नाम सम्भल और दूसरे का नाम लंकापुरी । चीनी और

तिब्बती ग्रंथों में इस लंकापुरी की चर्चा मिलती है –34। पौराणिक विश्वास के अनुसार इस जालंधर पीठ में सती के मृत शरीर का जिसे उन्मत भाव से शिव ताण्डव करनें लगे थे –स्तन भाग पतित हुआ था । यह पीठ त्रिगर्त प्रदेश में जो कि पंजाब के एक अंश का पुराना नाम है । ऐसा माना जाता है यहां मरनें से कीट–पशु पतंग सभी मुक्त हो जाते हैं । कहा जाता है कि जालंधर दैत्य का वध करनें के कारण शिव पापग्रस्त हो गये थे और जब इस पीठ में आकर उन्होंने तारादेवी की उपासना की ,तब जाकर उनका पाप दूर हुआ । यहां की अधिष्ठात्री देवी त्रि– शक्ति अर्थात त्रिपुरा ,काली और तारा है परन्तु स्तनाधिष्ठात्री श्री ब्रजेश्वरी हीं मुख्य मानी जाती हैं । इन्हें विद्याराज्ञी भी कहते हैं । स्तनपीठ में विद्याराज्ञी के चकतथा आधा त्रिपुरा की पिण्डी की स्थापना हैं । –35

जालंधरपीठ किसी जमानें में बज्रयानी साधना का प्रधान केंद्र था । इन दिनों वह विशुद्ध हिन्दू तीर्थ है । यहां अम्बिका ,जालपा, ज्वालामुखी ,आशापूर्ण, चामुण्डा, तारिणी, अष्टभुजा आदि अनेंक देवियों तथा केदारनाथ,वैद्यनाथ सिद्धनाथ ,महाकाल, आदि अनेक शिवस्थान तथा व्यास ,मनु, जमदग्नि ,परशुराम आदि मुनियों के आश्रम हैं । यद्यपि इस पीठ की प्रधान अधिष्ठात्री शक्ति त्रिशक्तिहैं । मुख्य स्तनपीठ की अधिष्ठात्री देवी का नाम ब्रजश्वरी है–36 ।2–जालन्धर नाथ के प्रसिद्ध शिष्य कानफा या कष्णपाद नें अपनें गुरु का नाम 'जालन्धरिया ' कहा हैं । राहुल जी नें उनका मगही हिन्दी में लिखित जो पद उद्धत किया है उसमें उनका नाम 'जालन्धीर ' लिखा है और आज भी जालंधरनाथ का संप्रदाय 'जालंधरिया 'कहलाता है 'जालंधरिया'या 'जालंधरिपाद'शब्द सूचित करता है कि ये जालंधर से संबद्ध अवश्य थे । वे फिर जन्म से हो या सिद्धि प्राप्त करनें से । वर्तमान अवस्था में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता । जालन्धरनाथ के शिष्य थे कृष्णपाद जिन्हें कण्हपा,कान्हुपा,कानपा आदि नामों से लोग याद करते हैं । श्री राहुल जी ने

तिब्बती परम्परा के आधार पर इन्हें कर्णाटदेशीय ब्राह्मण माना हैं। डॉ. भट्टाचार्य ने इन्हें जुलाहा जाति में उत्पन्न और उड़िया भाषी लिखा है ।–37

शरीर का रंग काला हाने के कारण इन्हें 'कृष्णपाद' कहा गया है । महाराज देवपाल के समय में ये पंडित भिक्षु थे एवं कई दिनों तक सोमपुरी विहार में इनका निवास था । उसके पश्चाात् ये जालंधर के शिष्य हो गये ,चौरासी सिद्धों में कवित्व और विद्या दोनों दृष्टियों से ये सब श्रेष्ट थे । इनके सात शिष्य चौरासी सिद्धों में गिनें जाते हैं जिनमें नखला और मेखला नाम की दो योगिनिया भी हैं ।38– महामहोपाध्याय पं. हर प्रसाद शस्त्री जी के कथनानुसार इनकी लिखी 57 पुस्तकें प्राप्त हुयी हैं और 12 सकीर्तन के पद पाये गये हैं तनजूर में इन्हें पन्द्रह स्थान पर उड़िया देशी ब्रह्मण कृष्णपाद का नाम आता हैं । इनका कहीं महाचार्य ,महासिद्धाचार्य,उपाध्याय,और मण्डलाचार्य कहकर सम्मान पूर्वक इनका नाम लिया जाता है । 39–

राहुल जी के मतानुसार तनजूर में दर्शन पर छः और तंत्र पर इनके चौहत्तर ग्रंथ मिलते है ।40–

अध्याय 1:–ब

घ::–संत काव्यों में गुरु तत्व की अवधारणा

विस्तृत विश्व के रंगमंच पर मानव अपनीं सीमित सांसों और शक्तियों के साथ अवतरित होता है । वह अपनीं जीवन यात्रा में बीहड़ बनों ,उत्तुंग शैल मालाओं एवं अतल सागरों की गहराईयों को नापता हुआ गतिमान तब तक नहीं हो सकता जबतक कि उसके जीवन में कोई पथप्रदर्शक न हो मानव को ज्ञान उसे अर्जित सम्पत्ति के रुप में ही प्राप्त होता है जो भी इस अर्जन किया में सहायक होता है तात्विक दृष्टि से उसी की संज्ञा गुरु है । भगवती श्रुति हमारी आदि गुरु के रुप में है जिसके अनुसार गुरु अपनीं संकल्प शक्ति ,भावना शक्ति मन अथवा चक्षु दृष्टि से ही शिष्य के अंदर भक्ति का संचार कर सकता है ।शिष्य का कार्य इस संचार को ग्रहण कर उसके पीछे चल देना होता है । उपनिषद साहित्य का जितना भी ज्ञान है वह गुरु शिष्य के संवाद के माध्यम से ही प्रप्त होता है । वहां शिष्य प्रश्न करता है और उसका गुरु समाधान प्रदान करता है । भागवत धर्म में गुरु की महत्ता का विशेष वर्णन हुआ हैं वहां स्पष्ट कहा गया है कि भवार्णव –संतरण के लिये गुरु अनिवार्य है । विभिन्न धर्मिक संप्रदाय चाहे वों वैष्णव हो चाहे वह शैव हो अथवा शाक्त हो ,जैन होअथवा बौद्ध,सभी में आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि गुरु के बिना असंभव बताई गयी है । भारतीय उपासना पद्धति में ही नहीं अपितु भारतेतर धर्मों के अंतर्गत भी गुरु का महत्व प्रतिपादित किया गया है । बौद्ध संप्रदाय में बुद्ध जैनियो नें जिन इस्लाम के पीर–पैगम्बर और इसाई धर्म के फादर पाल वही महत्व रखते थे जो महत्व हिन्दू धर्म के अंतर्गत गु3 को प्राप्त होता है ।

हिन्दू धर्म के अंतर्गत जिन प्रकार के देवताओ का वर्णन हुआ है उनमें आचार्य "गुरु" भी एक देवता माना गया है –

"मातृदोवोभव,पितृ देवो भव आचार्य देवो भव " ।

गुरु को देव के समान सम्मान पुराण तथा अर्वाचीन उपनिषद काल में प्राप्त हुआ था । श्वेताश्वर उपनिषद में कहा गया है –"यस्य देवो परा भक्तिर्यथा देवो तथा गुरौ " गीता में शारीरिक तप का वर्णन करते हुये गुरु पूजन का निर्देश हुआ है ।–

"देवद्विजगुरु प्राज्ञांपूजनं शौचमार्जतम् ।

ब्रह्मचर्यमहिसा च शारीरं तप उच्यते ।।17–14

सामान्य व्यक्ति अपनें को भूल जाता है । मै कौन हूँ मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ?आदि विषयों के भूलजानें का परिणाम होता है । देहात्म्–बोध की प्रबलता किन्तु जब गुरु अत्यंत कृपा पूर्वक व्यक्ति को 'ज्ञान करा' उसके 'मै' का ज्ञान करा देता है । तभी आत्म स्मृति उत्पन्न होती है । यह स्मृति ही समस्त ग्रंथियों के मोक्ष का कारण बनती हैं ।

गुरु गीता में गुरु को भगवान ही माना गया है –

ध्यानमूलं गुर्रोभूतिः पूजामूलंगुरोः पदम् ।

मंत्रमूलं गुर्रोवाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।

गुरु कों एक दूसरे स्थान पर भी ब्रह्म माना गया है ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुदेर्वो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

तांत्रिक संप्रदाय में सर्वाधिक प्रधानता गुरु ही को दी गयी है । इस संबन्ध में कतिपय विचारको का मत है कि नये तांत्रिक सम्प्रदाय नें प्राचीन अनुदर आचार्यों की तुलना में आचार्यों की तुलना में अपनें आचार्यों को अधिक प्रतिष्ठा प्रदान करके अभिप्राय से गुरु के महत्व का अधिकाधिक निरुपण किया है ।

प्रायः सभी युगों में धार्मिक सम्प्रदायों के अर्न्तगत गुरु के रुप की व्याख्या भिन्न–भिन्न रुपों में हुई है कहीं वह योग साधन कियाओं में बड़ा निष्णात है और कहीं वह भक्ति की वैष्णव विचारधारा से पूर्ण है गुरु के स्वारुप पर मतभेद हो सकता है और इस बात पर सभी संप्रदाय एक मत हैं । कि बिना

गुरु के निगुरा–रहकर साधक ब्रह्मोपासना में सफन नहीं हो सकता ।

गुरु शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक रुप में होता है ।

अमरकोष में गुरु की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि –

बृहस्पतिः सुराचार्यो ग्रीष्मर्तिर्धिषणोगुरुः ।
जीव आंगिरको वाचस्पीतिश्चित्रशिखण्डिजः ।।1–3–25

उपाध्याय,अध्यापक और संस्कसर करानें वाले व्यक्ति भी गुरु की ही संज्ञा प्राप्त करते हैं मनुस्मृति में भी गुरु का महत्व निरुपण करते हुये तीन प्रकार के गुरुओ का निर्देश किया गया है ।

लौकिकं वैदिकं कपि तथा उध्यात्मकमेव च।
आददीत् यतो ज्ञानंत पूर्वमभिवादयेत ।।

गुरु शब्द की व्याख्या उपस्थित करते हुये कहा गया है कि 'गु'शब्द का अर्थ है अंधकार और 'रु' शब्द का अर्थ है 'निरोधक' प्रकाश जो अंधकार का विनाश करता है वही वास्तव में गुरु है ।

संत साहित्य में भी गुरु का महत्व विशेष रुप से निरुपित किया गया है । नानक पंथी तो गुरु शब्द को वेदवत् स्वीकार करके उसकी आज्ञा माननें में अपनें जीवन का परम् कल्याण समझते हैं । इसलिये गुरुग्रंथ के शब्दों को भी वेदाज्ञा मानते हैं । दस संबन्ध में नानक का कथन है –

"गुरुमुखि नादम् गुरुमुखी वेदम् रहिया समाई।
गुरु ईसरु गोरखु वर्मा गुरु पारवती माई ।। –41

वस्तुतः गुरु मानव जीवन में एक अद्भुद शक्ति के रुप में आता है । डॉ. बडथ्वाल उसे एक डाइनिमिक शक्ति के रुप में देखते हैं उनका कथन है –साधक चाहे जितनें साधुओं का सत्संग करे उसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति में उत्तेजना लानें के लिसे उनके साथ केवल कभी–कभी संसर्ग में आनें सा काम नहीं चल सकता । उन्हें एक ऐसे डाइनमों की आवश्यकता है जो उन्हें अनवरत रुप में अभिष्ट विद्युत शक्ति की धारा पहुचाता रहे।

कबीर गुरु और शिष्य के कार्यो अथवा रुपों का विवेचन करते हुये कहते हैं कि गुरु के लिये यह आवश्यक है कि वह शिष्य को उपदेश की सीधी प्रकिया द्वारा उपदेश प्रदन करे यदि उपदेश के किसी वचनों में किसी प्रकार की वक्रता अथवा दॉव–पेंच होगे तो वे प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सकते। इसी प्रकार शिष्य को चाहिये कि वह उधारे अंग होकर (निरावृत्ति अवस्था) गुरु के समीप जानें जावे अर्थात उसके हृदय में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह न होना चाहिये अन्यथा गुरु के उपदेश को वह सम्यक रुपेण ग्रहण नहीं कर सके गा ।

सत्गुरु मार्‌या बाण भरि ,धरि करि सुधी मूंठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूं फूटि ।।–42

गरीब दास का भी यही कहावत है–

सतगुरु मारा बान कस ,कैबर गांसी खैंच।
भरम करम सब जरि गये ,लई कुबुधि सब ऐंच।।–43

उपदेश के संबन्ध में कबीर का यही कथन है कि उपदेश में केवल कोरा शासन और विधि कह चर्चा नहो ,क्यों कि विवेध कर्मो का शासन के रुप में कथन मानव की केवल बौद्धिक सीमा का स्पर्श करनें वाला होता है । कोई भी कार्य क्यों न हो जबतक उसमें हृदयस्त राग का सन्निवेश नहीं होगा तबतक उसकी सफलता में प्रश्न सूचक चिन्ह बना रहना स्वाभाविक है । समस्त विश्व प्रणव के प्रेम से बिंधा हुआ है अस्तु गुरु का वही उपदेश सार्थक सिद्ध हो सकता है जिसमें शिष्य के कल्याण के प्रति अगाध स्नेह विद्यमान हो यह तो एक मनोंवैज्ञानिक सत्य भी है ।प्रेम से पढ़ाया हुआ पाठ न केवलबगुरु के प्रति अतुल श्रद्धा की सृष्टि करता है अपितु शिष्य के जीवन में वह अतिस्मरणीय घटना के रुप में सतत विद्यमान रहकर कल्याण साधन करता है । इसीलिये कबीर कहते हैं कि –

सतगुरु लई कमाण कर ,तांहण लागा तीर।
एक जो ब्रह्मा प्रीति सो ,भीतर रह्मा सरीर।।–44

उपदेश में प्रेम की प्रधानता के महत्व का निरुपण कबीर बादल की रुपक योजना द्वारा करते हैं ।—

सतगुरु हमसूँ रीझकर ,एक कह्या परसंग।
बरस्या बादल प्रेम का ,भीग गया सब अंग।।—45

कबीर की भांति दरिया 'मारवाड़ी' गुरु की कृपा का उल्लेख करते हुये बादल का ही रुपक उपस्थित करते हैं —

गुरु आये धन गरजिकर ,अंतर कृपा उधाय।
तपता ते सीतल किया, सोता लिया जगाय।।—46

संशयात्मक स्थिति मानव जीवन के विकास में अवरोधक बनी रहती है । ज्ञान के अभाव में व्यक्ति नाना प्रकार की संकल्पात्मक एवं विकल्पात्मक स्थितियों में घड़ी के पेण्डुलम की भाति इधर—उधर भटकता रहता है । कबीर का विश्वास है कि जिसके हृदय में गुरु—उपदेश बिंध कर रह गया है वह समस्त संशयात्मक स्थितियों से परे रह कर पूर्ण मुक्तावस्था का उपभोग करता है इसी लिये उनका कथन है —

संसय खाया सकल जग ,संसा किनहुँ नखद्ध।
जे बेधे गुरु अठिपरा ,तीन संसा चुण चुण खद्ध।।—47

दरिया'मारवाण वाले' का भी वही विश्वास है —

सतगुरु सब्दा मिट गया ,दरिया संशय सोग ।
औसद दे हरिनाम का ,तन मन किया निरोग।।—48

गुरु के लिये यह आवश्यक है कि सैद्धांतिक एवं कियात्मक दोनों ही प्रकार के प्रयोगों में पूर्णतयः निष्णात हो , अन्यथा वह शिष्य के लिये उपादेय सिद्ध न हो

सकेगा इसीलिये कबीर कहते हैं कि –

जाका गुरु अंधरा ,चेला खरा निरंध।
अन्धै–अंधा ठेलिहै, दून्यू कूप परंत।। –49

जिस प्रकार गुरु के लिये पूर्ण ज्ञानीं होना आवश्यक है उसी प्रकार शिष्य को भी पूणतः जिज्ञासु तथा बुद्धि –संपन्न होना आवश्यक है ,अन्यथा गुरु के समस्त उपदेश शिष्य में ग्राहिका शक्ति के अभाव में व्यर्थ सिद्ध होगें –

सतगुरु बपुरा क्या करै, जो सिषही मांहै चूक।
भावै त्यूँ प्रमोध लै ,ज्यूं बंसि बजाई फूंक।।–50

सूरदास जी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि –

सुंदर शिष्य जिज्ञास है ,परि बुद्धि न होइ।
तौ समगुरु क्यों पचि मरै, शब्द ग्रहै नहि कोय।।–51

संसार सागर में डूबनें से बचानें वाला एक मात्र गुरु ही है । भक्ति–मुक्ति का भी वही प्रदाता है । इसी बात का उल्लेख करते हुये दादू कहते है –

सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढ़ाइ करि ,किये पैली पार।।–52

सतगुरु मिलै नो पइए, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजै देखिये, साहिब का दीदार।।–53

समस्त संशयों का विनाशक तथा मुक्ति का प्रदाता गुरु को ही मानते हुये संत कवि सुंदरदास का कथन है –

ऐसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरि कै ।
शिष्य मुकति ह्वै जाइ, संशय कोउ ना रहै।।–54

पर ऐसा गुरु साधारणतयः से प्राप्त नहीं होता । उसके लिये बड़ी खोज करनीं पड़ती है फिरभी यदि भगवत्कृपा नहीं होगी तो सद्गुरु नहीं मिलेगा । उसी की कृपा से सद्गुरु की संप्राप्ति संभव है । —

खोजत—खोजत सतगुरु पाया,
भूरि भाग्य जाग्यौं शिष आया ।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा,
यह तौ कृपा करि गोविन्दा ।।—55

संत कवि रज्जबदास भी सतगुरु की प्राप्ति प्रभु की कृपा का ही फल मानते हैं—

जनम सफल तबका भया ,चरनौ चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुरु पाया।।—56

धरनीं दास का विश्वास है कि गुरु के बिना जीवन वैसे ही निष्फल होता है जैसे धूंयें का महल जो वायु का थोड़ा सा भी स्पर्श पाते ही विलीन हो जाता है तथा धूलि का घर जिसका कुछ भी अस्तित्व नहीं है —

धूंवां केरा धौरेहरा, औ धूरी के धाम ।
ऐसे जीवन जगत में ,विनुगुरु विनुहरिनाम।।—57

गुरु की भक्ति उनका स्मरण सदैव हितकारी होता है ।उनके चरणों में रहकर व्यक्ति सदैव सुख—विलास अनुभव करता है । उसी की कृपा प्राप्त कर प्राणी सुजान की श्रेणी में परिगणित होनें लगता है । गुरु की उपदेशरुपी दवा खा लेनें पर फिर किसी प्रकार की अधिव्याधि नहीं रहती है । गुरु के उसी महत्व को उनुभव करते हुये रैदास एक रुपक की योजना द्वारा अपनें गुरु संबंधी विचार व्यक्त करते हैं —

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊं,
गुरु की सांटि, ग्यान का अच्छर ,

बिसरै तो सहज समाधि लगाउं
प्रेम की पाटी ,सुरति की लेखनीं,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊँ ।।–58

जीवन का सच्चा सुख मन की स्थिर गति में है । स्थिर प्रज्ञ प्राणी ही समस्त विकारों से रहित होकर परम आनन्द का उपभोग कर सकनें में सक्षम होते हैं जीवन की यह स्थिरता तबतक संभव नहीं है जबतक मन का चांचल्य दूर नहीं होता है गुरु अपनें उपदेशों द्वारा शिष्य को सतत प्रभावित करता रहता है।

अब्रतोगत्वा वह पुण्य घटिका अवतरित होती है जब शिष्य भ्रामक स्थिति से पूर्णतयः ऊपर उठकर स्थिरता को प्राप्त कर लेता है । कबीर के शब्दों में 'पांऊँ थै पंगुल भया सतगुरु मार्‍या बाण' की स्थिति ही पूर्ण आत्मबोध की स्थिति है । इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुये दरिया'मारवाड़ वाले' कहते हैं –

दरिया सतगुरु सबद की ,लागी चोट सुठौर।
चंचल सो निसचल भया, मिटगई मन की दौड़।।–59

संत साहित्य में गुरु संबंधी विचारों को प्रतीकात्मक शैली में भी व्यक्त किया गया है । कहीं उसे बाधिक के रुप में ,कहीं उसे सूरमा के रुप मे कहीं लुहार, कही केवट और कहीं राजगीर, पारस आदि विभिन्न रुपों में वर्णन किया गया है इसमें संदेह नहीं कि संत–साहित्य में गुरु का ही सर्वाधिक महत्व है । कबीर का विश्वास है –

गुरु गोविन्द तो एक हैं ,दूजा यहु आकार।
आपा मेंटि जीवत मरै ,तो पावै करतार ।।–60

<u>सतगुरु सांचा सूरमाः–</u> संतो नें अपनीं अपनी रचनाओं में गुरु को ब्रह्म से भी अधिक महत्व दिया है । उन्हो नें गुरु को प्रेरक ,प्रथम आभास देनें वाला, सच्ची

लौ लगानें वाला और कुशल आखेटक जो अपनें शिष्य को उपदेश के बाणों से बींध कर उसमें प्रेम की पीर संचरित कर देता है कहां है ।

संतों की मान्यता है कि प्रत्येक साधक के लिये गुरु की अनिवार्यता इसीलिये भी है क्यों कि वह अपनीं आध्यात्मिक साधना में कोई भी विघ्न उपस्थित होने पर गुरु से मार्ग निर्देशन प्राप्त कर सके । साधक एक ऐसा यात्री होता है जो लक्ष्य को ओर बढ़नें लालसा तो रखता है किन्तु वह लक्ष्य को नहीं देखे होता है इस लिये उसे ऐसे मार्ग दर्शक की आवश्यकता होती है जो कि स्वयं न केवल मार्ग को देखते हो बल्कि अच्छी तरह लक्ष्य को पहचानता हो ।

गुरु की प्राप्ति द्वारा साधक के हृदय में संशय और आशंका की भावनाएं समाप्त हो जाती हैं । उसे साधना मार्ग में एक सहायक मिलजाता है । जो उसे विघ्नों बाधाओं से परे निकाल देता है । उसके पैर डगमगानें पर उसे सहारा दे सकता है उसके साधना में निराश होनें पर उसमें अत्म विश्वास जगाकर आगे बढ़ा सकता है । गुरु का योग्य होना उतना ही जरुरी है जितना कि शिष्य का क्योंकि यदि गुरु स्वयं अयोग्य होगा तो वह शिष्य को ही ले डूबेगा।

गुरु की असीम कृपा शिष्य पर होती है । वस्तुतः वह ब्रह्म की कृपा पर उतना नहीं अश्रित रहता जितना कि गुरु की । इसलिये संतों का यही मत है कि यदि गुरु और गोविन्द में से उन्हें चुनना पड़े तो गुरु को ही चुनेंगे। वस्तुतः गुरु और गोविन्द में कोई फर्क भी नहीं है कबीर का कहना है कि —

गुरु गोविन्द तो एक हैं दूजा यहु आकार।
आपा मेटि जिवित मरै तो पवै करतारै

संतों नें गुरु का महत्व भारतीय संस्कृति और दर्शन की परंपरा से ग्रहण किया है अद्वयताकोपनिषद में कहा है —

गु शब्दस्त्वन्धकारः स्यायु शब्दस्तन्निरोधकः।

इस प्रकार अज्ञान रुपी अंधकार को दूर करके ज्ञान प्रदान करनें वाला गुरु

कहलाता है । गुरु को ब्रह्मा,विष्णु, महेश तथा साक्षत् परब्रह्म कहा गया है ।

गुंर्रु ब्रह्मा गुरुविष्णु, गुरुः देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षत् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

कबीर कहते हैं कि गुरु की कृपा से ही अगम और अगौचर ब्रह्म का दर्शन हो पाता है ।

अगम अगोचर रहे निरन्तरि गुरु कृपा ते लहिये।

दादू दयाल का कहना है कि जिस प्रकार ताले में चाभी डालकर किसी के द्वारा दरवाजा खोल लिया जाता है उसी प्रकार साधक के ज्ञान चक्षु का उन्मीलन कर गुरु द्वारा पर ब्रह्म का दर्शन करा दिया जाता है ।

दादू देव दयाल को गुरु दिखई बाट।
ताला कुंजी लाइकर खेले सबै कपाट।।

संत सुन्दरदास नें गुरु की कृपा का अत्यंत सुन्दर वर्णन किया है –

ज्यों रवि के प्रकटे निसि जात सो दूरि कियो भ्रमभानु अंधेरों।
कायक–वाचक मानस हुँ करिहै गुरु देवै वन्दन मेरौ ,
सुन्दरदास कहै करजोरि जु दादू दयाल कौ हूं नित चेरो।।

दरिया दास कहते हैं कि संशय की खींचतान सतगुरु के शब्द मात्र से समाप्त हो जाती है इससे भ्रम का अंधकार मिटता है और उसके चरणों का निर्वाण दायक हाकता है ।

गुरु की रहनीं ,करनीं ,और कथनीं से साधक प्रेरणा लेता है । रहनीं के अंतर्गत गुरु का रहन–सहन आता है जिसमें उसके दो रुप देखे जाते हैं एक तो लोक व्यवहार की रहनी और दूसरा आत्मस्थिति की रहनीं साधना पथ इसी रहनीं का रुप है इसमें हम गुरु की परिहित चिन्ता मानापमान में समभाव ,परम संतोषी वृत्ति आदि पाते हैं । गुरु सामाजिक स्थिति को सुव्यवस्थित करता है । समाज परक एवं व्यक्ति परक आसार –व्यवस्था को नियंत्रित करता है 'कथनीं'के अंतर्गत गुरु के लोक हित संबंधी उपदेश आते हैं इसमें हम कथनी और करनीं

का समन्वय पाते हैं उनके व्यक्तित्व का परिचय उसकी कथनीं में प्राप्त होता है।

गुरु को अपनें शिष्य के प्रति दयालु होना चाहिये उसे अपनीं कृपा प्रदर्शित करते समय बहुत सावधान रहना चाहिये और देखते रहना चाहिये कि शिष्य के अंदर किसी त्रुटि का प्रवेश तक न होने पावे । जब उसे ऐसी त्रुटि का पता चल जाये तो उसे शीघ्र दूर कर देवें और ऐसा करते समय उसका कठोर बन जाना आवश्यक है परंतु यदि वह अपनें व्यवहार में कुक्ष रुखा भी हो जाये तो ,शिष्य को उसे हर्ष पूर्वक सहन कर लेना चाहिये । क्यों कि गुरु नें वास्तव में उसी के हित की भावना से वैसा किया था। गुरु कुम्हार और शिष्य घड़े की भांति होता है । गुरु बर्तन की बुराइयों को ठोंक–ठोंक कर सुधारता रहता है ,भीतर से वह अपनें हाथ का सहारा देता है और उपर से चोट भी मारता है।

गुरु कुंभार सिष कुंभ है, गढ़ि–गढ़ि काड़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै , बाहर बहै चोट।।

आचार्य चतुर्वेदी नें कबीर के गुरु के विषय में अपनें मौलिक विचाार व्यक्त करते हुये कहा है कि हम प्रायः गुरु की चर्चा छेड़ते ही किसी न किसी शरीर धारी के स्थूल रुप में मार्ग प्रदर्शन आदि की कल्पना करनें लगते हैं परंतु इसके साथ ही हमें अनेंक ऐसे उदाहरण भी मिलते आये हैं जिनसे बहुत से जिज्ञासुओं का समाधान कमशः एक से अधिक पदार्थों ,प्राणियों अथवा घटनाओं के आधार पर भी अकस्मात हो जाता जान पड़ता है जिस कारण इन दृष्टि से हमें किसी एक 'मानव ' गुरु के प्रति श्रद्धा प्रकट करनें की आवश्यकता नहीं रह जाती । संत कबीर नें तों यहां तक कह डाला है कि उन्हें कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करते समय स्वयं निजी मानसिक वृत्तियों की स्थिति विशेष अथवा किसी दैवी अनुकंपा से भी सहायता मिलती आयी है ।

इसलिये आचार्य चतुर्वेदी का यह कहना है कि संभवतः 'गुरु' शब्द से तात्पर्य किसी ऐसी प्रेरक शक्ति से भी हो सकता है जिसनें उनके जीवन को

पूर्णतयः बदल दिया होगा इसीलिये वे उस शक्ति को गोविन्द से भी बढ़कर ठहराते हैं । कबीर नें कहा है —

करत विचार मनहीं मन उपजी ,ना कह गया न आया ।।

इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि उन्हें अपनें आप बिना किसी की सहायता के ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है । कि वे विचार करते रहते यह समझ गये हैं कि मै वस्तुतः अपनें आत्मरुप में जहाँ का तहाँ ही हूँ ।

इस प्रकार चतुर्वेदी जी नें संत साहित्य में गुरु के महत्व को अन्य व्यक्तियों की भांति स्वीकार तो अवश्य किया है किन्तु इस शब्द में सम्बद्ध एक नवीन परिकल्पना को संत साहित्य के विश्लेषण के क्षत्र में उतारा है जो भी हो संतो नें गुरु का महत्व निर्विवाद रुप से स्वीकार किया है । और वे उसके अनन्त उपकारों का वर्णन करते नहीं अघाते ।

<u>गुरुः:—</u> 'गारयति ज्ञानम् इति गुरुः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार गुरु उसे कहते हैं जो ज्ञान का घूंट पिलाये । ज्ञान मनुष्य जाति के लिये जो महत्व है उसे बतलानें की आवश्यकता नहीं । इसलिये ज्ञान का वितरण करनें वालें व्यक्ति का भी मनुष्य जाति मात्र के लिये अति आवश्यक है ।

ज्ञान दो प्रकार का होता है —एकतो ''स्वयं प्रकाश्य'' अर्थात अपनें आप पैदा होनें वाला और दूसरा 'परतः प्रकाश्य ' अर्थात दूसरों के द्वारा प्राप्त होनें वाला परतःप्रकाश्य ज्ञान तो सीधे गुरु के द्वारा ही प्रप्त होता है किन्तु 'स्वयं प्रकाश्य 'ज्ञान में भी गुरु उस ज्ञान को इंगित करके शिष्य की बुद्धि को ज्ञान की दिशा में प्रवाहित कर देता है । जिसमें स्वयं साधक अपनें लक्ष्य का आभास पाकर उसे ही प्राप्त करनें में जुट जाता है और फिर अंततः **अपनीं** साधना में सफल हो जाता है । इस प्रकार दोनों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति ं गुरु का महत्वपूर्ण योग रहता है । यही कारण है कि वेदों से लेकर आज तक के भारतीय साहित्य में गुरु की अपार महिमा वर्णित की गयी है ।

वेदों में अनेक देवताओं की स्तुति करते हुये उनसे ज्ञान—दान

की प्रार्थना की गई है इस प्रकार अप्रत्यक्ष रुप से उन्हें गुरु माना गया है और उनके महत्व को स्वीकारा गया है । उपनिषदों में भी गुरु का महत्व सर्वत्र दीख पड़ता है यम नें नचिकेता को आत्मा का स्वरुप बताते हुए कहा है कि आत्मज्ञान बहुतों को सुननें के लिये भी प्राप्य नहीं है ,बहुत से लोग उसे सुनकर भी नहीं समझ पाते हैं । इस अत्मतत्व का निरुपण करनें वाला 'गुरु' आश्चर्य का विषय है और सुनकर उसे ग्रहण करनें वाला व्यक्ति भी कुशल होता है कुशल व्यक्ति के उपदेश से ज्ञान प्राप्त कर लेनें वाला भी आश्चर्य का विषय है –

श्रवणायापि बहुमिर्यो न लम्यः
श्रण्वन्तो पि वहैव यं न विधुः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलो स्यलब्धा
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट।।

इसी संदर्भ में यह भी कहा गया है कि कई प्रकार से कल्पित किया हुआ है कि आत्मा साधारण बुद्धि वाले पुरुष द्वारा कहे जानें पर अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता । अभेददर्शीय आचार्य द्वारा उपदेश किये गये इस आत्मा में कोई गीत नहीं है । क्यों कि यह सूक्ष्म से सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है ।–

न नरेणाव रेण प्रोक्त एष,
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्य प्रोक्ते गतिरत्र नास्तित्र
अणीयान्ह्यतवर्य मणुप्रभाणत्।।

इस प्रकार गुरु के सुविज्ञ और शिष्य के लग्न पूर्ण होनें पर बार–बार जोर दिया गया है । वेदांत में भी आत्मा का साक्षात्कार कर चुके सिद्ध पुरुषों द्वारा जो जीवन्मुक्त (जीवित रहकर भी मुक्त)रहते हैं विधि पूर्वक वेद–वेदांग पढ़े हुये नित्य नैमित्तिक प्रायश्चित और उपासना नामक कर्मो द्वारा समस्त पापों से रहित साधक को ज्ञान का उपदेश करना वर्णित है । वेदांत विद्या के ही नहीं समस्त विद्याओं को पढ़नें के लिये प्रारम्भ में ही अधिकारी की चर्चा कर दी

जाती थी और उसके उद्देश्य की भी ।

रामायण में वशिष्ठ मुनी के गुरुत्व का एक महान गौरवश पूर्ण इतिहास है सूर्यवंशी इक्ष्वाकु राजा के कुलगुरु वशिष्ठ नें त्रिशंकू, हरिश्चन्द्र, रोहिताश्व आदि को सतयुग में ज्ञान किया थाऔर बाद में वहीं त्रेता में दिलीप, रघु अज, दशरथ ,और राम आदि के भी गुरु थे । इतनें लम्बे काल तक एक व्यक्ति का तीना असंभव समझकर लोग 'वशिष्ठ एक व्यक्ति नहीं परंपरा मानना ही उचित समझते हैं ।

मनु ने विद्यार्थियों को र्घ्म का उपदेश करते समय माता –पिता और गुरु की महिमा गाई है उन्हों नें अनेंक प्रकार के गुरु महान बताते हुए कहा है कि –

'गुरु शुत्रूषया त्वेवं
ब्राह्मलोकं समश्नुते'

अर्थात गुरु की सेवा द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है यह इसी के समान है कि 'आचार्य देवो भव' अर्थात अचार्य को देवता मानो । अपने गुरु को देवता के समान मानने वाले शिष्य आरुपणि अथवा उद्यालक नें अपनीं गुरु भक्ति से गुरु धौम्य को भी अमर बना दिया ,जो खेत से बहते पानी को रोकने की आज्ञा के लिये पानीं न रुकता देखकर खेत की मेड़ में ही लेट गया था । भवभूति नें गुरु के बारे में कहा है कि गुरु बुद्धिमान और जड़ दोनों प्रकार के शिष्यों को समान रुप से विद्या देता है किन्तु जड़ शिष्य दुर्भाग्य से उतना ग्रहण नहीं कर पाता जितना कि बुद्धिमान ।

सच्चे गुरु की खोज में भगवान बुद्ध कई वर्ष जंगलो में भटके थे और अंततः उन्हें अपना गुरु बनाना पड़ा ।

इसप्रकर समूचे संस्कृत साहित्य में किसी न किसी स्थल पर गुरु की महिमा वर्णित है और अच्छे गुरु की प्राप्ति एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानीं गयी है इससे बढ़कर और क्या कहाजा सकता है।

गुर्रु ब्रह्मा गुरुविष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षत् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ नाथों और सिद्धों से होता है नाथों और सिद्धों के यहां गुरु का जो महत्व है ,वह सर्वविदित है । गुरुओं की जो भाक्ति नाथों और सिद्धों में मिलती है वह संस्कृत साहित्य में वर्णित कथाओं से कम महत्व नहीं रखती ।

भक्ति काल में तो क्या भक्त ,क्या संत सभी नें गुरु की मुक्तिकंठ से महिमा गायी है गोस्वामी तुलसीदास नें गुरु को शंकर स्वरुप कहा है और कहा है कि 'वन्दे बोध्यम नित्यं गुरु शंकर रुपिणम्।' इतना ही नही उन्हो नें गुरु की सतुति में बहुत कुछ लिखा है जैसे—

वन्दौ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।

तुलसी ने गुरु का महत्व बताते हुये उसके स्मरण मात्र से होने वाले लाभ को बताया है , कि गुरु की कृपा से हृदय के नेत्र खुलने से साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है —

उघरहि विमल विलोचन हिय के।
मिटहि दोष दुःख भव रजनी के ।।

इस प्रकर वह परमतत्व का साक्षात्कार उसी प्रकार सहज ही कर लेता है जैसे—

यथा सुअंजन आंजि हग,
साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैलवन,
भूतल भूरि निधान।।

सूर के विषय में तो प्रसिद्ध कहावत है कि उनके गुरु वल्लभाचार्य ने उनके कृतित्व को उलट दिया थाउनके दैन्य और आत्मग्लानि

के पदों को सुनकर वल्लभाचार्य ने कहा था कि 'क्या घिघियते ही रहोगे कुछ कृष्ण लीला ही गाओ । और फिर वात्सल्य और श्रिगार का –सूरसागर' उत्तालतरंगे भरने लगा था जो आज भी हिन्दी साहित्य के गौरव की वस्तु है ।

जायसी के पद्मावत में सुआ गुरु का काम करता है –गुरु सुआ होइ पंथ दिखावा ।' अतः प्रेम मार्ग में भी गुरु का महत्व है । वहीप्रेमी को प्रिय की ओर सबसे पहले उन्मुख करता है । प्रिय का आभास मिलजाने पर प्रेमी उसे पाने की अदम्य लालसा उत्पन्न होती है । इसके प्रयास में साधक के साथ–साथ निर्देशक के रुप में सदैव गुरु रहता है वह साधना में आने वाले प्रत्येक विघ्न में साधक की सहायता करता है और उसे 'गुरु' बताता है अन्ततः सिद्धि होने पर ही वह साधक को छोड़ता है ।

कबीर 'गुरु दिखई बाट' कहकर साधना में सिद्धि का सारा श्रेय अपने गुरु को दिया है । 'काशी में हम प्रगट भए हैं रामानन्द चेताये' जैसी उक्ति भी इसी का प्रमाण है अधिक क्या कहना वे तो गुरु को ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं –

गुरु गोविन्द दोउ खड़े ,काके लागूँ पांय ।
बलिहारी गुरु आपने ,गोविन्द दियो मिलाय ।।

समर्थ गुरु की वाणी के कबीर हथियार मानते हैं –

हसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्हा मारि ।
यह कबीर भितर भिधा ,सतगुरु के हथियार ।।

उनकी ग्रंथावली में गुरु की प्रशंसा और आभार व्यक्त करने के लिये "गुरु कौ अंग" नामक भाग केवल गुरु को ही आकर्षित करते हैं ।

कबीर ने उचित गुरु के चुनाव पर ही जोर देते है और देते हुये अनुचित गुरु की निन्दा की है ।

जाका गुरु ही अंधड़ा ,चेला खरा निखंत ।
अन्धेहि अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़न्त ।।

मीरा नें बड़े गर्व से कहा था—

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे,
घर से कमल मिलो।
सतगुरु सीख दियो जब अपनी,
जोति से जोति रली।

संतो द्वारा गुरु को जो महत्व दिया गया है उसका कारण डॉ. धूर्वीर भारती के अनुसार सम्भवतः तान्त्रिक युग का अवशिष्ट प्रभाव था , क्यों कि जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव ,सभी संप्रदायों में जब गुह्य साधनाओं का समावेश हुआ , तो गुरु की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती गयी ,क्योंकि साधना की प्रवृत्ति दुरुह थी और अज्ञानी साधक को गुरु का निर्देशन आवश्यक था । तंत्र संप्रदाय थे अतः अनुदार पुरानें आचार्यों की तुलना में संप्रदायों के आचार्यो को पतिष्ठित करनें के लिये भी सहसा गुरु को अत्यधिक श्रद्धा से मंडित किया जाने लगा था । यह प्रतिद्वन्दिता कभी—कभी जातीय और प्रादेशिक आधार पर भी चलती थी (द. 'स्टडीज इन तन्त्राज'प्रबोध चन्द्र बागाची)।

'गुह्यतंत्र समाज' में प्रत्येक तथागत का गुरु एक बज्राचार्य बताया गया है जिसकी वे स्वतः पूजा करते है इसी सिद्धांत के अनुसार सिद्धों ने गुरु महिमा का गान किया है । नाथों का गुरु योग साधना का ज्ञाता है और संतो का गुरु वैष्णव प्रतीत होता है इसी स संत सदा गुरु की भक्ति के प्रबल समर्थक हैं ।

गुरु नें संतो को अहेरी,सूरमा,पारख,गारुणी,भेदी,खेवक,ज्ञानप्रकाशी और शतरंज की चाल बताने वाला कहा है ,तो कभी चैतन्य चौकी पर आसन लगाकर निर्भय निःशंक रहनें का उपदेश देने वाला , शब्द घोलना से घोलकर ज्ञान सकला देने वाला किसलीगर बताया है कई बार उसे परमेश्वर या उससे बड़ा कहा गया है ।—

'गुरु गोविन्द दोउ खड़े ,काके लागूँ पांय।
बलिहारी गुरु आपनें ,जिन गोविन्द दियो बताय।।

संतो ने गुरु के लिये ऐसा पद दिया है जो वेदों में 'तत्व मासि' कहकर ब्रह्म या परमेश्वर को दिये गये पद से भी ऊँचा है । यह पद है पारख पद यही सच्चा पद है ,गीता के परम्धाम से भी बहुत बहुत ऊँचा इसी पारख पद को पाने वाला पारखी कहलाता है गुरु इसी चेतन –चौकी पर बैठने के कारण पारखी कहलाता है इसी पारख पद पर पहुँचकर जुलाहा कबीर पारष हुआ था ।

1.पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास , पं चन्द्रकान्त बाली , पृ, 6 , नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली सं, 1962।

2–श्रौतमुनि चरितामृत, प्रवाह–7,तरंग–2,पृ,131 ।

3–History of Shikkha's J.D. Kaningham, Page-38 .

4–मध्यकाल नो साहित्य प्रवाह , डॉ. कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी,पृ, 18 ।

5–"पृथ्वीराज रासो",चन्द्रबरदायी विपिन विहारी त्रिवेदी, छन्द –712,पृ,69।

6–Guru Tattva- Swami Shivanand.Essence of Guru Geeta. Page No.88.

7–भारतीय संस्कृति कोश, तीसरा भाग पृ, 78 ।

8, भारतीय संस्कृति कोश, तीसरा भाग पृ, 78,79 ।

9, भारतीय संस्कृति कोश, तीसरा भाग पृ, 78,79 ।

10, भारतीय संस्कृति कोश, पृ. 79,80 ।

11, भारतीय संस्कृति कोश, तीसरा भाग पृ, 79–80 ।

12,Guru Tattva-Swami Shivanand, Ch. 1st.,The role of Guru " P.8".

13, हिन्दी विश्वकोश–खण्ड 3 ,पृ, 467 ।

14 ,आगम और तंत्रशास्त्र, पृ, 102।

15,मनुस्मृति, 2: 142 पृ,

16, आगम और तंत्रशास्त्र, पृ, 103।

17,संत साहित्य के पारिभाषिक शव्दावली ,पृ,

18, संत साहित्य के पारिभाषिक शव्दावली ,पृ,

19, संत साहित्य के पारिभाषिक शव्दावली ,पृ,

20,कबीर ग्रन्थावली, पृ,

21," द स्टडीज इन तन्त्राज " पृ,

22, संत साहित्य के पारिभाषिक शव्दावली ,पृ,

23,पंच प्रयाग; पृ, 13

24, कवितावली, उत्तरकाण्ड –84

25.मालती माधव ,5.–2

26,नेपाल कैटलॉग,: 2 य भाग, पृ, 19

27,तंत्रालोकः प्रथम भाग, पृ, 25

28, विचारदास की टीकाः पृ,40

29,यो,सं, आ, पृ, 227 और आगे

30,बौ,गा,दो,पृ,4 ,गंगापुरातत्वांकः,पृ,221

31,बौ,गा, दो, पृ,15

32, गंगापुरातत्वांक , पृ, 252–3

33, यो,सं,आ,पृ,86–87

34,स्ट,तं, पृ, 39,

35, भाग ,1 , में डॉ . पी.सी , बागची का बज्रगर्भ तंत्र राज सूत्र : एयू वर्क ऑफ किंग इन्दुबोध , स्टडी एन्ड ट्रान्सलेशन ।

36, कल्याण शक्ति अंक में श्री तारानन्द जी तीर्थ के एक लेख के आधार पर , दे, पृ, 675

37, साधनमाला , द्वितीय भाग , प्रस्तावना पृ. 53

38, गंगा , पुरातत्वांक , पृ. 254

39 बौ. गा. दो. पृ. 24

40,गंगा , पृ. 254

41,संतसुधासार,पृ.131

42. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 5

43.संतवाणी संग्रह, भाग 1, पृ. 182

44.कबीर ग्रन्थावली पृ. 1

45. कबीर ग्रन्थावली पृ. 4

46. संतवाणी संग्रह, भाग 1 ,पृ. 126

47.कबीर ग्रन्थावली, पृ.3

48. संतसुधासार पृ. 422

49.कबीर ग्रन्थावली पृ. 2

50.कबीर ग्रन्थावली पृ. 3–2

51.सुन्दर ग्रन्थावली, पृ. 672

52.संतवाणी संग्रह , भाग 1, पृ. 76

53.संतवाणी संग्रह भाग 1, पृ. 77

54.संतसुधासार ,पृ.343

55.संतसुधासार,पृ. 343

56.वही पृ.307

57.धरनीदास–संतवाणी संग्रह ,पृ.112

58. रैदास, संत सुधासार, पृ.96

59.संतवाणी संग्रह भाग 1,पृ. 1–6

60.कबीर ग्रन्थावली, पृ.3